Con. 3. IX-4.49
320

अंक 9
संख्या 4

बुधवार
3 अगस्त
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप

[अनुच्छेद 276, 188, 277-क, 278 और 278-क पर विचार] 193–245

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 3 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 276

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 276 को लेंगे। इस पर कुछ संशोधन हैं जिनकी सूचना दे दी गई है और जो छपी सूची के भाग 2 में दिये हुये हैं।

(संशोधन संख्या 3002 पेश नहीं किया गया।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम) : क्या मैं संकेत करूं कि संशोधन संख्या 3003 मसौदा सम्बन्धी संशोधन है? उसमें कुछ शब्दों को केवल इधर से उधर किया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि ऐसी बात है तो मैं उससे सहमत हूं।

(संशोधन संख्या 3004 और 3005 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्यचा 3006 ठीक मसौदा सम्बन्धी जैसा नहीं है। संशोधन संख्या 3006 संशोधन संख्या 3003 का आनुषंगिक है। अतः दोनों को पेश करिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 276 में 'then' शब्द के बाद के 'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को अपमार्जित किया जाये और 'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को इसी अनुच्छेद के खंड (क) के आरम्भ में प्रविष्ट किया जाये।"

मैं यह संशोधन भी पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 276 के खंड (ख) के अन्त में 'notwithstanding that it is one which is not enumerated in the Union List' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

(अनुपूरक सूची का संशोधन संख्या 119 पेश नहीं किया गया।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***अध्यक्ष:** और कोई संशोधन नहीं है। क्या कोई व्यक्ति बोलना चाहता है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** अध्यक्ष महोदय, मैं निवेदन करता हूं कि खंड (ख) के अन्त में कुछ शब्द जोड़ने का संशोधन संख्या 3006 इस अनुच्छेद के शुरू के भाग में आ ही जाता है। जिन शब्दों के जोड़ने की प्रस्थापना की गई है वे ये हैं:

"इस बात के होते हुये भी कि वह संघ सूची में प्रगणित नहीं है।"

इस बात के होते हुये भी कि जो विषय संव्यवहृत है वह संघसूची में प्रगणित नहीं है आपात की उद्घोषणा से उद्भूत उस विषय सम्बन्धी कुछ शक्तियां राष्ट्रपति को दी जा रही हैं। राष्ट्रपति को वह प्रान्तीय सूची के विषयों पर कार्यवाही करने की शक्ति देता है। परन्तु यह रक्षाकवच तो वहां अनुच्छेद 276 के आरम्भ में ही है। डॉ. अम्बेडकर इन शब्दों को खंड (क) के अंत में रखने की प्रस्थापना करते हैं। परन्तु भाव वही रहता है क्योंकि अनुच्छेद का आरम्भ इन शब्दों से होता है। "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी" जिसमें यह शर्त आ जाती है कि "इस बात के होते हुये भी कि वह संघ सूची में नहीं है"। अत: अन्त में इन शब्दों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इन शब्दों का भाव इस साधारण शर्त द्वारा आ जाता है "इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी" जो अनुच्छेद के आरम्भ में है। साधारण शब्दों के होते हुए भी यदि हमें इस प्रकार की विशिष्ट बात का उल्लेख करना है तो उन बातों को बिल्कुल स्पष्ट रखना पड़ेगा, पर इस बात का किसी को विश्वास नहीं हो सकता है कि आगे कोई और भी अपवाद होंगे जिनका विशिष्ट उल्लेख आवश्यक होगा। यह संशोधन अनावश्यक है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यदि मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद भारतीय सरकार के अधिनियम की 126-क धारा को देखें तो उनको विदित हो जायेगा कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन क्यों आवश्यक है, क्योंकि जब आपात घोषित कर दिया जाता है तो आपातकाल में अनुच्छेद 276(ख) संघ को व्यापक शक्ति प्रदान करता है और इस अर्थ को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए ये शब्द आवश्यक हैं। भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 126-क में प्रयुक्त भाषा के अनुसार विषय को स्पष्ट कर दिया गया है। यदि वे एक बार फिर उस धारा को पढ़ें तो उनको यह विदित हो जायेगा कि इस अनुच्छेद में इन शब्दों के रखने पर कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं मेरे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** तब तो मैं संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 276 में 'then' शब्द के बाद 'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को अपमार्जित किया जाये और

'notwithstanding anything contained in this Constitution' शब्दों को इसी अनुच्छेद के खंड (क) के आरम्भ में प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 276 के खंड (ख) के अन्त में 'notwithstanding that it is one which is not enumerated in the Union List' शब्दों को प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 276 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 276 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 188, 277-क, 278 और 278-क

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम अनुच्छेद 277 पर आते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह चाहूंगा कि अभी अनुच्छेद 277 को रोक लिया जाये।

***अध्यक्ष:** तो क्या हम अनुच्छेद 277-क को लें? अभी अनुच्छेद 277 को रोक लिया गया है और इस समय हम अनुच्छेद 277-क को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि इन तीनों संशोधनों को एक साथ ले लिया जाये—अनुच्छेद 188 के हटाने का संशोधन, नवीन अनुच्छेद 277-क का पुर:स्थापना करना और पुराने अनुच्छेद 278 के स्थान में नवीन अनुच्छेद 278 और 278-क का रखना—क्योंकि इनके विषय परस्पर सम्बंधित हैं। मतदान के प्रयोजनार्थ इनको पृथक-पृथक रखा जा सकता है। पर वाद-विवाद के हेतु, मैं समझता हूं, कि इनको साथ-साथ लिया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 188, 278 और 278-क को एक साथ लिया जायेगा क्योंकि उनका विषय परस्पर सम्बन्धित है और यह अच्छा होगा कि इन सब अनुच्छेदों की चर्चा एक साथ की जाये यद्यपि हम इन पर पृथक-पृथक मत लेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 188 अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 277 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'277-A. Duty of the Union to protect States against external aggression and internal disturbance. It shall be the duty of the Union to protect every State against external aggression and internal disturbance and to ensure that the government of every State is carried on in accordance with the provisions of this Constitution.' "

[277(क). बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से राज्य का संरक्षण करने का संघ का कर्तव्य। बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।]

और फिर इसके बाद, श्रीमान्, मैं सूची 2 के संशोधन 160 को पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 278 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखे जायें:

278. (1) Provisions in case of Failure of Constitutional machinery in States. If the President, on receipt of a report from the Governor or Ruler of a State or otherwise, is satisfied that the Government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constitution, the President may by proclamation—

(a) assume to himself all or any of the functions of the Government of the State and all or any of the powers vested in or exercisable by the Governor or Ruler, as the case may be, or anybody or authority in the State other than the Legislature of the State;

(b) declare that the powers of the Legislature of the State shall be exercisable by or under the authority of Parliament;

(c) make such incidental and consequential provisions as appear to the President to be necessary or desirable for giving effect to the objects of the proclamation, including provisions for suspending in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to any body or authority in the State:

Provided that nothing in this clause shall authorise the President to assume to himself any of the powers vested in or exercisable by a High Court or to suspend in whole or in part the operation of any provisions of this Constitution relating to High Courts.

(2) Any such 'Proclamation may be revoked or varied by a subsequent proclamation.

(3) Every Proclamation under this article shall be laid before each House of Parliament and shall, except where it is a proclamation revoking a previous Proclamation, cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People is dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in this clause and the Proclamation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the people first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(4) A Proclamation so approved shall, unless revoked, cease to operate on the expiration of a period of six months from the date of the passing of the second of the resolutions approving the Proclamation under clause (3) of this article:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Provided that if and so often as a resolution approving the continuance in force of such a Proclamation is passed by both Houses of Parliament, the Proclamation shall, unless revoked, continue in force for a further period of six months from the date on which under this clause it would otherwise have ceased to operate, but no such Proclamation shall in any case remain in force for more than three years.

Provided further that if the dissolution of the House of the People takes place during any such period of six months and a resolution approving the continuance in force of such Proclamation has not been passed by the House of the People during the said period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the proclamation have been passed by both Houses of Parliament.'

Constitutions exercisable.

"278-A. (1) Where by a Proclamation issued under clause (1) of article 278 of this Constitution it has been declared that the powers of the Legislature of the State shall be exercisable by or under the authority of Parliament, it shall be competent.—

(a) for Parliament to delegate the power to make laws for the State to the President or any other authority specified by him in that behalf;

(b) for Parliament or for the President or other authority to whom the power to make laws is delegated under sub-clause (a) of this cause to make laws conferring powers and imposing duties or authorising the conferring of powers and the imposition of duties upon the Government of India or officers and authorities or the Government of India;

(c) for the President to authorise when the House of the people is not in session expenditure from the Consolidated Fund of the State pending the sanction of such expenditure by Parliament;

(d) for the President to promulgate Ordinances under article 102 of this Constitution except when both Houses of Parliament are in session.

(2) Any law made by or under the authority of Parliament which Parliament or the President or other authority referred to in sub-clause (a) of clause (1) of this article would not, but for the issue of a Proclamation under article 278 of this Constitution, have been competent to make shall to the extent of the incompetency cease to have effect on the expiration of a period of one year after the Proclamation has ceased to operate except as respects things done or omitted to be done before the expiration of the said period unless the provisions which shall so cease to have effect are sooner repealed or re-enacted with or without modification by an Act of the Legislature of the State."

राज्यों में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की अवस्था में उपबन्ध

[278. (1) यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उपबन्धों के उद्घोषणा द्वारा:

(क) उस राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य, तथा यथास्थिति राज्यपाल या शासक में, अथवा राज्य के विधान मंडल को छोड़कर राज्य के किसी निकाय या प्राधिकारी में निहित, या तदद्वारा प्रयोक्तव्य सब या कोई शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा;

(ख) घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी;

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(ग) राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित करने के लिए उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसे कि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दें:

परन्तु इस खंड की किसी बात में राष्ट्रपति को यह प्राधिकार न होगा कि वह उच्च न्यायालय में निहित या तद्द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियों में से किसी को अपने हाथ में ले अथवा इस संविधान के उच्च न्यायालयों से सम्बद्ध किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित कर दे।

(2) ऐसी कोई उद्घोषणा किसी उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत या परिवर्तित की जा सकेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन की गई प्रत्येक उद्घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी, तथा जहां वह पूर्ववर्ती उद्घोषणा को प्रतिसंहृत करने वाली उद्घोषणा नहीं है वहां वह दो महीने की समाप्ति पर, यदि उस कालावधि की समाप्ति से पूर्व संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा वह अनुमोदित नहीं हो जाती तो, प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु यदि कोई ऐसी उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक-सभा का विघटन इस खंड में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा के विषय में लोक सभा द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहले कोई संकल्प पारित नहीं किया गया है तो उद्घोषणा उस तारीख से, जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता।

(4) इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहृत नहीं हो गई हो तो, इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाले संकल्पों में से दूसरे के पारित हो जाने की तारीख से छह महीने की कालावधि की समाप्ति पर वह प्रवर्तन में नहीं रहेगी:

परन्तु ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत रखने के लिये अनुमोदन करने वाला संकल्प, यदि और जितनी बार, संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तो, और उतनी बार, वह उद्घोषणा, जब तक कि प्रतिसंहृत न हो जाये, उस तारीख से जिससे कि वह इस खंड के अधीन अथवा प्रवर्तन में नहीं रहती, छह महीने की और कालावधि तक प्रवृत्त बनी रहेगी, किन्तु कोई ऐसी उद्घोषणा किसी अवस्था में भी तीन वर्ष से अधिक प्रवृत्त नहीं रहेगी:

परन्तु यह और भी कि यदि लोक सभा का विघटन छह मास की किसी ऐसी कालावधि के भीतर हो जाता है तथा ऐसी उद्घोषणा को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प लोक सभा द्वारा उक्त कालावधि में पारित नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगा जब तक कि उक्त तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा को प्रवर्तन में बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता।

278क. (1) जहां इस संविधान के अनुच्छेद 278 के खंड (1) के अधीन निकाली गई उद्घोषणा द्वारा यह घोषित किया गया है कि राज्य के विधान-मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी वहां—

(क) राष्ट्रपति को अथवा राष्ट्रपति द्वारा तदर्थ उल्लिखित किसी अन्य प्राधिकारी को राज्य के लिये विधि बनाने की शक्ति देने की संसद् को,

(ख) भारतीय सरकार अथवा उसके पदाधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्ति देने या कर्तव्य आरोपित करने के लिए अथवा शक्तियों का दिया जाना या कर्तव्यों का आरोपित किया जाना प्राधिकृत करने के लिये, विधि बनाने की संसद् की अथवा राष्ट्रपति की या ऐसी विधि बनाने की शक्ति जिस अन्य प्राधिकारी में उपखंड (क) के अधीन निहित है उसकी,

(ग) जब लोक सभा सत्र में न हो तब व्यय के लिए संसद् की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को प्राधिकृत करने की राष्ट्रपति की,

(घ) जब संसद् के दोनों सदन सत्र में न हों उस समय इस संविधान के अनुच्छेद 102 के अधीन अध्यादेश प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति की, सक्षमता होगी।

(2) राज्य के विधान-मण्डल की शक्ति के प्रयोग में संसद् द्वारा अथवा राष्ट्रपति अथवा इस अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (क) में निर्दिष्ट अन्य प्राधिकारी द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे (इस संविधान के) अनुच्छेद 278 के अधीन की गई उद्घोषणा के अभाव में संसद् या राष्ट्रपति या ऐसा अन्य प्राधिकारी बनाने के लिए सक्षम न होता, उद्घोषणा के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् एक वर्ष की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक सिवाय उन बातों के प्रभाव में न रहेगी जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई थीं जब तक कि वे उपबन्ध, जो इस प्रकार प्रभावी न रहेंगे, समुचित राज्य के विधान-मंडल के अधिनियमन द्वारा उससे पहले ही या तो निरसित और या रूपभेदों के सहित या बिना पुनः अधिनियमित न कर दिये गये हों।]

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल) : अनुच्छेद 188 भी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं कह चुका हूं कि अनुच्छेद 188 अपमार्जित किया जायेगा। उसके लिये यह वास्तव में आवश्यक नहीं है कि संशोधन पेश किया जाये। पूरे चित्र का सदन को अनुमान कराने के लिए मैंने कहा है कि हम अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने की प्रस्थापना करते हैं।

श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि संभवत: इस अनुच्छेद पर पूरी-पूरी बहस होगी और जो आलोचनात्मक प्रश्न उठाये जायेंगे उनकी व्याख्या करने के लिए शायद मुझे किसी समय बुलाया जाये, अत: मैं समझता हूं कि यह ठीक होगा कि इस नयी योजना से उद्भूत अनेक प्रश्नों को बहुत व्यापक रूप में लेने के क्षेत्र में मैं प्रवेश न करूं। अनुच्छेद 188 को हटाकर अनुच्छेद 277-क को जोड़कर और पुराने अनुच्छेद 278 के स्थान में दो नवीन अनुच्छेद 278 और 278-क रखकर जिस वस्तु विन्यास का हम उपबन्ध करते हैं उसकी आरम्भ में मैं केवल रूप रेखा ही देना चाहता हूं।

मैं समझता हूं कि मैं लोक सभा को यह स्मरण कराकर भली प्रकार से आरम्भ कर सकता हूं कि जब हम संविधान के साधारण सिद्धान्तों पर विचार कर रहे थे उस समय सभा द्वारा यह मान लिया गया था कि संविधान के निलम्बित करने के लिए संविधान में किसी तंत्र का उपबन्ध होना चाहिये। दूसरे शब्दों में यह कि इस संविधान में कुछ ऐसे उपबन्धों का पुन:स्थापन करना चाहिये जो भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की धारा 93 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के कुछ-कुछ समान हों। जिस समय सभा द्वारा यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया था उस समय यह प्रस्थापित किया गया था कि यदि प्रान्त का राज्यपाल यह अनुभव करता है कि प्रान्त के विषयों के प्रशासन के लिये जो तंत्र नियत किया गया था वह विफल हो जाता है तो उद्घोषणा द्वारा एक पक्ष के लिये उस प्रान्त के प्रशासन को स्वयं अपने ऊपर ले लेने के शक्ति राज्यपाल को होनी चाहिये और उसके बाद इस विषय की सूचना वह संघ के राष्ट्रपति को दे कि तंत्र विफल हो गया है, उसने उद्घोषणा जारी कर दी है और प्रशासन अपने ऊपर ले लिया है, और इस प्रकार मूल अनुच्छेद 188 के अधीन राज्यपाल द्वारा प्रतिवेदन करने पर राष्ट्रपति अनुच्छेद 278 के अधीन कार्यवाही कर सकता था। यह मूल योजना थी।

अब यह सोचा गया है कि यदि आपात वास्तविक है जिसके कारण राष्ट्रपति के लिये कार्यवाही करना अपेक्षित है तो सर्वप्रथम केवल एक पक्ष के लिये संविधान निलम्बित करने की शक्ति राज्यपाल को देने से प्रयोजन की लाभदायक रूप में पूर्ति नहीं हो सकेगी। यदि इस संविधान में निहित विधान को निलम्बित करने के लिए राष्ट्रपति को अन्त में प्रान्तीय क्षेत्र में प्रवेश करने के उत्तरदायित्व को ग्रहण करना ही है तो यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि राष्ट्रपति आरम्भ से ही उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाये। इस आधार पर कि इस परिस्थिति के लिए यही सही हल है कि यदि राष्ट्रपति का ही उत्तरदायित्व है तो वह आरम्भ से ही इस क्षेत्र में आ जाये तब तो यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 188 व्यर्थ है और उसकी आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि मैंने इस अनुच्छेद 188 के अपमार्जन की प्रस्थापना की है।

अब मैं अनुच्छेद 277-क पर आता हूं। कुछ लोग यह सोचेंगे कि अनुच्छेद 277-क केवल एक पवित्र घोषणा है और उसको वहां नहीं रखना चाहिये। मसौदा

समिति ने कुछ और ही विचार किया है, अत: मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि मसौदा समिति ने यह क्यों सोचा कि अनुच्छेद 277-क यहां होना चाहिये। मैं समझता हूं कि इस संविधान में ऐसे बहुत से उपबन्धों के होते हुए भी कि जिनके द्वारा केन्द्र को प्रान्तों के अधिकार हथियाने की शक्ति दी गई है यह मान लिया गया है कि वह फेडरल है—इससे यह आशय है कि अपने क्षेत्र में प्रान्त उतने ही सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हैं जितना कि केन्द्र अपने उस क्षेत्र में है जो उसे सौंपा गया है। दूसरे शब्दों में उन उपबन्धों को छोड़कर जो केन्द्र को प्रान्त द्वारा पारित किसी विधान को रद्द करने की अनुज्ञा देते हैं, प्रान्त को अपनी शान्ति, व्यवस्था और सुशासन के लिये कोई भी विधि बनाने का पूरा प्राधिकार है। अब जबकि संविधान एक बार प्रान्तों को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न बना देता है और अपनी शांति, व्यवस्था और सुशासन के लिये कोई भी विधि बनाने की पूरी-पूरी शक्तियां दे देता है तो वास्तव में केन्द्र अथवा किसी अन्य प्राधिकार द्वारा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये क्योंकि यह प्रान्त के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न प्राधिकार पर आक्रमण होगा। यह एक मूल प्रस्थापना है जिसे मैं समझता हूं कि हमें इस तथ्य के आधार पर स्वीकार कर लेना चाहिये कि हमारा संविधान फेडरल है। ऐसा होने के कारण यदि प्रान्तीय विषयों के प्रशासन में केन्द्र को हस्तक्षेप करना है—जिसके लिए अनुच्छेद 278 और 278-क के द्वारा हम केन्द्र को प्राधिकृत करने की प्रस्थापना रख रहे हैं—तो वह किसी आभार द्वारा तथा उस आभार के अधीन होना चाहिये जिसे संविधान केन्द्र पर आरोपित करे। ऐसा आक्रमण नहीं होना चाहिये जो स्वेच्छाचारी, मनमाना और विधि द्वारा अप्राधिकृत हो। अत: यह बिलकुल स्पष्ट करने के लिए कि अनुच्छेद 278 और 278-क को केन्द्र द्वारा प्रान्तों के प्राधिकार पर मनमाने आक्रमण के रूप में न समझा जाये, हम अनुच्छेद 277-क के पुर:स्थापन करने की प्रस्थापना करते हैं। सदस्यों को यह विदित होगा कि अनुच्छेद 277-क में यह कहा गया है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह प्रत्येक एकक का रक्षण करे और संविधान का पोषण भी करे। जहां तक इस आभार का सम्बन्ध है यह देखा गया है कि हमारा संविधान ही ऐसा नहीं है जो इस कर्त्तव्य और इस आभार का सृजन कर रहा हो। ऐसे खंड अमरीका के संविधान में हैं। आस्ट्रेलिया के संविधान में भी वे हैं जहां कि संविधान में स्पष्ट निबन्धन द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि केन्द्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि एककों अथवा राज्यों का बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करे। हम केवल उस सिद्धान्त में एक और खंड जोड़ने की प्रस्थापना करते हैं जो अमरीका और आस्ट्रेलिया के संविधानों में दिया गया है और वह यह कि प्रान्तों के इस विधि द्वारा अधिनियमित रूप में संविधान का पोषण करना संघ का कर्त्तव्य होगा। इसमें कोई नई बात नहीं है और जैसा कि मैंने कहा था कि इस तथ्य के कारण कि प्रान्तों को पूरी शक्तियां दे रहे हैं और उनके क्षेत्रों में उनको संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न बना रहे हैं। अत: यह उपबन्ध करना आवश्यक है कि यदि केन्द्र द्वारा प्रान्तीय क्षेत्र पर कोई आक्रमण किया जाता है तो वह इस आभार के कारण है। वह कार्य इस आभार तथा इस कर्त्तव्य की पूर्त्ति के लिए किया जायेगा और जहां तक इस संविधान का सम्बन्ध है उसे एक स्वेच्छाचारी, मनमाने और अप्राधिकृत कार्य के रूप में नहीं समझा जा सकता है। इस हेतु हमने अनुच्छेद 277-क का पुन:स्थापन किया है।

अनुच्छेद 278 और 278-क यद्यपि वे दो पृथक खंड प्रतीत होते हैं पर वे हैं मूल अनुच्छेद 278 के भाग मात्र। अनुच्छेद 278 में लगभग सात खंड हैं।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रथम चार खंड नये अनुच्छेद 278 में रख दिये गये हैं। खंड (4) से आगे के खंड अनुच्छेद 278-क में हैं। इस विभाजन का कारण यह है कि यदि यह न किया जाता तो अनुच्छेद 278 इतना बड़ा हो जाता कि सदस्यों के लिए उसमें अन्तर्विष्ट अनेक उपबन्धों का समझना कठिन हो जाता। उसको सरल करने के लिए यह विभाजन किया गया है।

अनुच्छेद 278 में पहला परिवर्तन जिस पर ध्यान देना चाहिये यह है कि राष्ट्रपति को राज्यपाल के अथवा अन्यथा प्रतिवेदन पर कार्यवाही करनी है। मूल अनुच्छेद 188 में केवल यह उपबन्ध दिया गया था कि राज्यपाल के प्रतिवेदन करने पर राष्ट्रपति को कार्यवाही करनी है। 'अन्यथा' शब्द वहां नहीं था। अब यह अनुभव किया गया कि इस तथ्य के कारण कि अनुच्छेद 278 का पूर्ववर्ती अनुच्छेद 277-क केन्द्र पर कर्तव्य तथा आभार आरोपित निकरता है तो राष्ट्रपति की कार्यवाही को प्रान्त के राज्यपाल के प्रतिवेदन तक सीमित तथा निर्बन्धित करना ठीक नहीं है—वह कार्यवाही जो अनिवार्य रूप से कर्तव्य पालन के लिए करनी होगी। यह भी हो सकता है कि राज्यपाल प्रतिवेदन ही न करे। फिर भी तथ्य कुछ ऐसे हों कि राष्ट्रपति यह समझें कि उसका हस्तक्षेप आवश्यक तथा अनिवार्य है। मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 277-क के पुर:स्थापन के अवश्यम्भावी परिणामस्वरूप हमें राष्ट्रपति को उस समय भी कार्यवाही करने की स्वतंत्रता देनी चाहिये जबकि राज्यपाल द्वारा कोई प्रतिवेदन न हो और राष्ट्रपति की जानकारी में जब कुछ तथ्य ऐसे आ गये हों जिनके आधार पर वह यह समझे कि अपने कर्तव्य पालन के लिए उसे कार्यवाही करनी चाहिये।

दूसरा परिवर्तन जो अनुच्छेद 278 द्वारा किया गया है वह यह है कि पहिले, विधान-मंडल के प्राधिकार और शक्तियां केवल संसद् द्वारा प्रयोज्य थीं, अब यह उपबन्ध किया गया है कि यह प्राधिकार किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है जिसे संसद् अपना प्राधिकार दे दे। संसद् पर यह एक बड़ा भार हो जायेगा कि वह यथार्थ रूप में उन प्रान्तीय विधान मंडलों की विधायी शक्तियों को स्ववश में रखे जिनको निलम्बित किया जायेगा क्योंकि संसद के पास पहले ही इतना अधिक कार्य होगा कि उसके लिए उस विधान को संव्यवहृत करना संभव नहीं होगा जो उन प्रान्तों के लिए आवश्यक है जिनके विधान-मंडल उद्घोषणा के अधीन निलम्बित कर दिये गये हैं। अत: विधान कार्य में सुविधा के लिए अब यह उपबन्ध कर दिया गया है कि या तो संसद स्वयं इस कार्य को करे या कुछ शर्त और निबन्धन तथा प्रतिबन्ध के अधीन विधान कार्य के संचालन के लिए किसी अन्य प्राधिकारी को प्राधिकृत करे।

दूसरा बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया गया है कि यदि दो माह की समाप्ति के पूर्व संसद संकल्प द्वारा उस उद्घोषणा को आगे और समय के लिए जारी रखने की स्वीकृति नहीं देती है तो दो महीने के पश्चात् यह उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी। पहले यह उपबन्ध था कि यदि संसद् उसका विस्तार नहीं करती है तो वह छह महीने तक प्रवृत रहेगी। वर्तमान मसौदे में यह काल केवल दो माह कर दिया गया है। इसके बाद यदि उद्घोषणा को जारी रखना है तो संसद् के संकल्प द्वारा उसका अनुसमर्थन होना चाहिये।

दूसरा परिवर्तन यह किया गया है कि मूल अनुच्छेद में यदि संसद् ने एक बार उस उद्घोषणा का अनुसमर्थन कर दिया तो आगे बिना और अनुसमर्थन के वह उद्घोषणा बारह महीने तक चल सकती थी। इस स्थिति में भी परिवर्तन कर दिया गया है। बारह महीनों को अब दो भागों में बांट दिया गया है, प्रत्येक भाग 6 महीने का है और प्रथम अनुसमर्थन के पश्चात् उद्घोषणा 6 महीने तक चल सकती है और उसके बाद संसद् द्वारा उसका अनुसमर्थन होगा। संसद् के अनुसमर्थन के पश्चात् वह फिर केवल 6 माह तक चलेगी। संसद् के द्वारा और भी अनुसमर्थन हो सकेगा और इस प्रकार संसद् द्वारा अनुसमर्थित होने के पश्चात् उद्घोषणा को छः महीने की अवधि दी गई है। आगे और जारी रखने के लिये और अनुसमर्थन अपेक्षित है और हमने अधिकतम सीमा तीन वर्ष की रखी है। तीन वर्ष के पश्चात् प्रान्त में उस स्थिति की सत्ता को न तो संसद् और न राष्ट्रपति बनाये रख सकता है जिसके अधीन उद्घोषणा प्रभावी हुई है।

इसके पश्चात् मैं अनुच्छेद 278-क पर आता हूं। उपखंड (क) जो यह उपबन्ध करता है कि संसद् राज्य के लिए विधि बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को अथवा उसके द्वारा तदर्थ उल्लिखित किसी व्यक्ति को दे दे। यह एक नया उपखंड है।

इस अनुच्छेद के उपखंड (ख) में आनुषंगिक परिवर्तन है, अनुच्छेद 278-क के खंड (1) के उपखंड (क) का आनुषंगिक। उसमें कहा गया है कि किसी ऐसी विधि को प्रभाववर्ती रखने के लिए, जो संसद् द्वारा अथवा संसद् द्वारा तदर्थ नियुक्त किसी अभिकरण द्वारा बनाई गई हो, किसी व्यक्ति को प्राधिकार दिया जा सकता है चाहे वह भारतीय सरकार का पदाधिकारी हो या चाहे वह प्रान्तीय सरकारों का ही पदाधिकारी हो।

अनुच्छेद 278-क के खंड (1) का उपखंड (ग) एक नया खंड है। वह बजट की मंजूरी के लिए उपबन्ध करता है। अनुच्छेद 278 के मूल मसौदे में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं किया गया था कि जिस प्रान्त का विधान-मंडल निलम्बित कर दिया गया है उसके बजट को तैयार और मंजूर किस प्रकार किया जाये। इस विषय को अब अनुच्छेद 278-क के खंड (1) के उपखंड (ग) के पुरःस्थापन से स्पष्ट कर दिया गया है, जिसमें यह स्पष्ट उपबन्ध किया गया है कि जब लोक सभा सत्र में न हो तब व्यय के लिए संसद् की मंजूरी लम्बित रहने तक राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय को राष्ट्रपति प्राधिकृत कर सकता है।

उपखंड (घ) इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर देता है जो शायद अनुच्छेद में पहले अस्पष्ट थी कि किसी उस विशिष्ट प्रान्त के शासन संचालन के सम्बन्ध में अध्यादेश देने की अनुच्छेद 102 द्वारा दी हुई अपनी शक्तियों का राष्ट्रपति प्रयोग कर सकता है जिस प्रान्त को उस समय ले लिया गया है जबकि दोनों सदन सत्र में न हों। मूल अनुच्छेद 102 केन्द्रीय सरकार के लिये अध्यादेश देने तक सीमित था। अब हम उपखंड (घ) के द्वारा यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस शक्ति का राष्ट्रपति द्वारा उन अध्यादेशों के लिए भी प्रयोग किया जायेगा जिनका पारित करना उस प्रान्त के शासन संचालन के लिए आवश्यक हो जो ले लिया गया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल) : श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 158 और 159 (सूची 2 द्वितीय सप्ताह) पेश नहीं कर रहा हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं संशोधन संख्या 202 पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मैं आरम्भ में आपसे यह निवेदन कर सकता हूं कि आप सभा को यह बता दें कि आप किस रीति या प्रणाली का हमसे पालन कराना चाहते हैं—क्या हम प्रत्येक अनुच्छेद पर पृथक-पृथक संशोधन पेश करे या चारों अनुच्छेदों पर एक साथ संशोधन पेश करें?

***अध्यक्ष:** मैं यह चाहूंगा कि सब अनुच्छेदों पर एक साथ संशोधन पेश किये जायें।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, अनुच्छेद 278 पर (सूची 2 द्वितीय सप्ताह) संशोधन संख्या 161 और 162 को मैं पेश करना नहीं चाहता हूं। सर्वप्रथम मैं अनुच्छेद 277 को लूंगा और उससे सुसंगत समस्त संशोधनों को पेश करूंगा। मैं सभा का ध्यान द्वितीय सप्ताह की सूची 4 के संशोधन संख्या 220, 221 और 223 की ओर आकर्षित करता हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 277-क में 'Union' शब्द के स्थान में 'Union Government' शब्द रखे जायें।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 277-क में पहली बार आने वाले 'and' शब्द के स्थान में 'or' शब्द रखा जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 277-क में 'internal disturbance' शब्दों के स्थान में 'internal insurrection or chaos' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 278 पर उसी सूची के निम्न संशोधनों को आपकी अनुमति से पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में से 'or otherwise' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'is satisfied that' शब्दों के पश्चात् a grave emergency has arisen which threatens the peace and tranquillity of the State and that' शब्द जोड़े जायें।"

श्रीमान्, क्या आप मुझे आज्ञा देंगे कि इन संशोधनों के महत्व को स्पष्ट करने के लिए मैं सभा को अनुच्छेदों के उन रूपों को पढ़कर सुनाऊं जो सभा द्वारा इन संशोधनों के स्वीकार कर लेने पर हो जायेगा? यदि सभा द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 277-क इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"277-A. It shall be the duty of the Union Government to protect every State against external aggression or internal insurrection or choas and to ensure that the Government of every State is carried on in accordance with the provisions of this Constitution."

[277-क. बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक विद्रोह तथा अराजकता से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्तव्य होगा।]

यदि सभा द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद 278(1) इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"278. (1) If the President, on receipt of a report from the Governor or Ruler of a State, is satisfied that a grave emergency has arisen which threatens the peace and tranquillity of the State and that the Government of the State cannot be carried on in accordance with the provisions of this Constitution, he may, etc., etc."

[278. (1) यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जो राज्य की शान्ति और क्षेम के लिए संकट जनक है और राज्य का शासन इस संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा, इत्यादि, इत्यादि।]

इतना तो संशोधनों के औपचारिक पठन के सम्बन्ध में है।

सभा के समक्ष आज चार अनुच्छेद हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या मैं यह सुझाव रखूं कि सर्वप्रथम इस अनुच्छेद पर सब संशोधनों को पेश कर दिया जाये और फिर बाद में साधारण चर्चा हो?

***अध्यक्ष:** बहुत अच्छा, तो अब प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना अपने संशोधन पेश कर सकते है। श्री कामत का भाषण बाद में होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (1) में 'Ruler' शब्द के स्थान में 'Rajpramukh' शब्द रखा जाये।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 160 में प्रस्थापित अनुच्छेद 278 के खंड (4) के प्रथम परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:

"Provided that the President may if he so thinks fit order at any time during this period a dissolution of the State legislature followed by a fresh general election, and the Proclamation shall cease to have effect from the day on which the newly elected legislature meets in session."

(परन्तु यदि राष्ट्रपति ठीक समझे तो इस कालावधि में विधान-मंडल के विघटन और उसके बाद नये साधारण निर्वाचन के लिए आदेश दे सकेगा और उद्घोषणा उस दिन से प्रभाव शून्य हो जायेगी जिस दिन नये निर्वाचित विधान-मंडल का सत्रारम्भ होता है।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं अपने संशोधन संख्या 122, 123, 124 और 125 पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं अपने संशोधन संख्या 161 और 162 पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** ये ही सब संशोधन हैं जिनकी सूचना आ चुकी है। अब श्री कामत भाषण दे सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने जो विषय आज सभा के समक्ष प्रस्तुत किया है उस पर बोलने का आपने यह अवसर मुझे दिया। इन अनुच्छेदों के तीन उद्देश्य हैं यद्यपि ये उद्देश्य परस्पर सम्बंधित हैं। सर्वप्रथम अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने का प्रयास किया गया है और दो नये अनुच्छेदों अर्थात् 277-क और 278-क को रखने का प्रयास किया गया है और कुछ अंशों में अनुच्छेद 278 के प्राचीन मसौदे में रूपभेद करने की प्रस्थापना की गई है।

अनुच्छेद 188 का अपमार्जन करने वाले प्रस्ताव को लेते हुये मैं सभा का तथा डॉ. अम्बेडकर का ध्यान उन कुछ बातों की ओर आकर्षित करूंगा जो राज्यपाल की स्वविवेक शक्तियों सम्बन्धी उपबन्ध के अपमार्जन करने के सम्बन्ध में अनुच्छेद 143 पर वाद-विवाद करते समय कहीं थीं। उस अवसर पर मसौदा समिति की ओर से वाद-विवाद का उत्तर देते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि सिद्धान्तरूप से तो वे अनुच्छेद का स्वागत करते हैं परन्तु संविधान में इस संशोधन के समावेश करने के सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयां हैं। उस समय उन्होंने कहा था कि जब तक अनुच्छेद 188 और 175 पर अन्तिम विचार नही होता है तब तक उनके अथवा सभा के लिये मेरे द्वारा पेश किये गये उन संशोधनों पर निश्चित करना कठिन होगा जिनमें राज्यपाल को संविधान के मसौदे द्वारा दी गई स्वविवेक शक्तियों

से वंचित करने का प्रयास हैं। जो कुछ उस अवसर पर उन्होंने कहा था क्या मैं उनको उसकी याद दिला सकता हूं? मैं सभा की सरकारी रिपोर्ट से उद्धृत कर रहा हूं। उन्होंने कहा था कि अनुच्छेद 143 का पठन उन अन्य अनुच्छेदों के साथ-साथ किया जायेगा जो विशेष रूप से राज्यपाल की शक्ति का रक्षण करते हैं। आगे चल कर उन्होंने यह कहा था:

> "मुझे ऐसा प्रतीत होता हैं कि तीन प्रकार हैं जिनके अनुसार स्वविवेक शक्तियों के विषय को निश्चित किया जा सकता है। एक प्रकार वह है कि जिसका सुझाव पंडित कुंजरू तथा अन्य सदस्यों ने रखा है कि अनुच्छेद 143 में से कुछ शब्दों को निकालकर 188 अथवा 175 जैसे अनुच्छेद अथवा अन्य वे उपबन्ध जोड़ दिये जायें जिनका सभा राज्यपाल को स्वविवेक शक्तियां सौंपते हुए यह कहकर कि अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुये भी राज्यपाल को यह शक्ति होगी। वह शक्ति होगी पुर:स्थापन कर सके।"

डॉ. अम्बेडकर ने कहा "दूसरा प्रकार यह होगा कि अनुच्छेद 143 में यह कहा जाये कि अनुच्छेद अमुक अमुक में अनुच्छेद 175 और 188 का विशेष रूप से उल्लेख करते हुये जो उपबन्ध किये गये हैं उनको छोड़कर। यदि मुझे इस समय यह विदित हो जाये कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्तियां देने के लिये संविधान सभा और कौन-कौन से उपबन्धों की प्रस्थापना करना चाहती है तो मैं अनुच्छेद 143 के अंतिम भाग का संशोधन करने के लिए उद्यत हूं। मेरे लिये कठिनाई यह है कि अभी हम अनुच्छेद 278 और 188 पर नहीं आ पाये हैं और न हमने राज्यपाल को स्वविवेक शक्तियां देने की समस्त सम्भावनाओं का ही अन्त कर दिया है"। उन्होंने कहा था "यदि मुझे यह मालूम हो जाये तो मैं अनुच्छेद 143 संशोधन से सहमत हो जाऊंगा, पर यह अब नहीं हो सकता है"।

पहले अवसर के निर्देश का प्रश्न यह था: मैंने एक संशोधन में वह प्रश्न उठाया था जिस पर सभा में गरमागरम बहस हुई थी और डॉ. अम्बेडकर ने सभा द्वारा अनुच्छेद 175 और 188 पर विचार हो जाने के बाद इस विषय पर पुनर्विचार करने का वायदा किया था। अब वह समय आ गया है कि वे इस विषय पर पुनर्विचार करें। हमने अनुच्छेद 175 (2) पर विचार समाप्त कर लिया है जो विधान सम्बन्धी स्वविवेक शक्तियां राज्यपाल को देता है और हम अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने का प्रयास कर रहे हैं जिसमें राज्यपाल को विशेष स्वविवेक शक्तियां देने का प्रयास किया गया है। सभा के लिए अब यह उपयुक्त समय है कि उस अवसर पर डॉ. अम्बेडकर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी दोनों ने जो कुछ कहा था उस पर विचार करे। उन्होंने कहा था कि जब हम इस अनुच्छेद पर विचार समाप्त कर लेंगे उसके पश्चात् हम ठीक प्रकार से अनुच्छेद 143 पर वापस आ सकेंगे और उसमें संशोधन कर सकेंगे।

अत: श्रीमान्, अनुच्छेद 143 का आनुषंगिक संशोधन आवश्यक है और मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस बात का ध्यान रखेंगे और जब उन्हें समय मिले तब वे इस अनुच्छेद में ठीक-ठीक संशोधन करेंगे। डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 188 के अपमार्जन करने के लिए जो संशोधन रखा है उस पर इस प्रकार विचार समाप्त होता है। मैं उसका इस परन्तुक के साथ समर्थन करता हूं कि अनुच्छेद 143 का संशोधन ठीक-ठीक किया जाये।

[श्री एच.वी. कामत]

अब आइये अनुच्छेद 277-क पर। इस अनुच्छेद के अनुसार हमने कुछ कर्तव्य संघ सरकार के लिये निर्धारित किये हैं। सर्वप्रथम यह कि किसी बाह्य आक्रमण से वह प्रत्येक संविधानिक एकक का रक्षण करे। दूसरे यह कि आभ्यन्तरिक अशान्ति से राज्य का संरक्षण करे—मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर और मसौदा समिति का इससे यह आशय है कि राज्य में किसी आभ्यन्तरिक अशान्ति की उत्पति को संघ सरकार रोके। अंतिम यह कि संघ सरकार पर यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह यह देखे कि प्रत्येक राज्य की सरकार का संचालन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार हो रहा है। अंतिम उपबन्ध से तो मैं पूर्णतया सहमत हूं कि संघ सरकार यह नियम बना ले कि वह यह देखती रहे कि प्रत्येक राज्य संविधान के अर्थ और भाव का भी पालन तथा सम्मान करता है। प्रत्येक संविधानिक एकक की बाह्य आक्रमण से रक्षण सम्बन्धी उपबन्ध से भी मेरा कोई झगड़ा नहीं है। मेरी तुच्छ राय में तो शायद आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करने वाले बीच के उपबन्ध पर मतभेद होने की सम्भावना है।

(इस समय अध्यक्ष महोदय ने आसन रिक्त किया और उस पर उसके पश्चात् उपाध्यक्ष महोदय श्री टी.टी. कृष्णमाचारी आसीन हुये।)

इस सम्बन्ध में मेरे विचार से निर्णायक प्रश्न यह है कि आभ्यान्तरिक अशान्ति क्या और क्या नहीं है। क्या किसी राज्य में किसी छोटे से उत्पात या साधारण दंगे या गड़बड़ी से उस राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में राष्ट्रपति अथवा संघ सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जायेगा? यदि माननीय सदस्य सप्तम अनुसूची की सूची 2 को देखें तो उन्हें विदित होगा कि पद 1 द्वारा लोक-व्यवस्था का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से राज्य के कंधों पर रखा गया है (पर उसमें असैनिक शक्ति की सहायतार्थ नौ सेना, सेना और विमान-बल का समावेश नहीं किया है।) यह सब राज्य के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत होगा। वह समवर्ती सूची में भी नहीं है। लोक-व्यवस्था का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से राज्य सरकार पर रखा गया है। अब मूल बात यह है: आप कहते हैं कि राज्य लोक-व्यवस्था बनाये रखे। परन्तु एक नये अनुच्छेद 277-क के द्वारा आप यह कहते हैं कि आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का रक्षण संघ सरकार करेगी। जो कुछ हम व्यवस्था कर रहे हैं उसके प्रति हम सच्चे हो। इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर मन में कोई बात छिपा कर रखने से कोई लाभ नहीं है। यदि हम प्रान्तीय स्वायत्तता को कम करने जा रहे हैं तो हमें संविधान में ऐसा कम देना चाहिये। इस बात में हमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिये। यह हमारी ओर से बेईमानी है कि एक अनुच्छेद में यह कहें कि लोक-व्यवस्था का उत्तरदायित्व राज्य पर होगा ओर उसके बाद दूसरे अनुच्छेद में किसी आभ्यन्तरिक अशान्ति के छोटे से बहाने पर राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्तियां संघ सरकार को दे दें। अत: इस कठिनाई को दूर करने के लिए मैंने सूची 4 (द्वितीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 222 को पेश किया है। उसमें 'आभ्यन्तरिक अशान्ति' के स्थान में 'आभ्यन्तरिक विद्रोह तथा अराजकता' रखने का प्रयास किया गया है। 'अशान्ति' बहुत ही व्यापक तथा लचीला शब्द है। मानव शरीर की अशान्ति अंगुली में थोड़े से दर्द से लेकर तेज बुखार और अचेतन अवस्था तक हो सकती है। इसी प्रकार राज्य में अशान्ति दो आदमियों

में मारपीट से लेकर उस एक पूरे विद्रोह तक हो सकती है जिसके कारण शायद अराजकता हो जाये। हमारा लक्ष्य क्या है? क्या हम संघ सरकार को यह देखने की शक्ति देना चाहते हैं कि राज्य की शान्ति, व्यवस्था और प्रशान्ति संकट में न पड़े या हम संघ सरकार को राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति दे रहे हैं? मैं नहीं समझता हूं कि पिछला उद्देश्य हमारा है। प्रस्तावना में कहा गया है कि हम भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बना रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने अभी यह कहा था कि फेडरल योजना में प्रत्येक राज्य की उस क्षेत्र में संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता का विचार निहित है जो उसके बांट में आ गया है। सातवीं अनुसूची की सूची 2 लोक व्यवस्था को राज्य के बांट में देता है। और यह अनुच्छेद थोड़े या बहुत रूप में राज्य की सरकारों को सातवीं अनुसूची द्वारा प्रदत्त शक्तियों से वंचित करने का प्रयास करता है। यदि सभा द्वारा बिना अधिक विचार किये यह अनुच्छेद 277-क स्वीकृत हो जाता है तो आभ्यान्तरिक अशान्ति को मिटाने या दबाने के बहाने से संघ सरकार द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता का भविष्य में दबाया जाना या नष्ट होना मुझे दिखाई देता है। यदि हमारा यही उद्देश्य है तो हम ऐसा कहें और उसके पश्चात् इस अनुच्छेद को पारित करें। यदि हम ऐसा नहीं कर रहे हैं, यदि हमारा उद्देश्य यह है कि प्रान्तीय स्वायत्तता को उन्नत बनायें–इसमें संदेह नहीं कि यह उन्नति धीरे-धीरें ही होगी—तो हम इस बात को साफ-साफ कहें और एक अन्तर्वर्ती साधन के रूप में, इस अन्तर्वर्ती काल के लिये एक उपबन्ध के रूप में, जिसमें होकर हम गुजर रहे हैं—इस संकट काल के लिए जिसमें हम जीवनयापन कर रहे हैं यह उपबन्ध करें और यह कह कर इस अनुच्छेद का संशोधन करें कि केवल विद्रोह या अराजकता होने पर ही संघ सरकार को राज्य के आभ्यन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी न कि राज्य में किसी अशान्ति के उत्पन्न होने पर। इसके लिये तो राज्य के पास यथेष्ट शक्तियां हैं, आरक्षक बल, रक्षा दल तथा अन्य अनेक प्रकार के सहायक बल। क्या हम राज्य सरकार पर स्वयं अपनी लोक शांति तथा व्यवस्था की देख भाल करने में और अपने राज्यक्षेत्र की सीमा में प्रशान्ति बनाये रखने में विश्वास नहीं कर सकते हैं? मैं तो यह समझता हूं कि जिस संविधान पर हम सभा में विचार कर रहे हैं उसकी यही भावना है और इसी भावना को अपने मन में रखकर इस तथ्य से अथवा आकस्मिकताओं से अथवा भविष्य में किसी परिस्थिति के उत्पन्न होने की सम्भावना से राष्ट्रपति तथा संघ सरकार के लिए जितनी शक्तियां अपेक्षित हैं उससे अधिक शक्तियां हम उनको न दें।

इस विषय के सम्बन्ध मे मैंने तीन संशोधन पेश किये हैं 220, 221 और 222। पहला केवल शाब्दिक है। चूंकि अनुच्छेद 1 'संघ' की परिभाषा करता है, मैंने सोचा कि 'संघ' शब्द के स्थान में 'संघ सरकार' शब्द अधिक उपयुक्त होगा। अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि भारत राज्यों का संघ होगा। अगर हम 'संघ' कहते हैं तो यह शब्द अस्पष्ट रहेगा और उसका आशय संघ के विभिन्न प्राधिकारियों से हो सकता है। राज्य में आभ्यन्तरिक अशान्ति या बाह्य आक्रमण होने पर क्या राज्य के विषयों में हस्तक्षेप करने और दखल देने के लिए अथवा यह देखने के लिए कि राज्य की सरकार का संचालन संविधान के उपबन्धों के अनुसार हो रहा है उनकी आवश्यकता है? यदि डॉ. अम्बेडकर मेरे इस संशोधन को समझ सकते हैं तो मैं उनसे 'संघ' शब्द के स्थान में 'संघ सरकार' रखने के लिए

[श्री एच.वी. कामत]

निवेदन करूंगा। यह केवल शाब्दिक संशोधन है और इसे मैं उनकी सामूहिक बुद्धि पर छोड़ता हूं जो मुझे विश्वास है कि मेरी बुद्धि से उच्च है।

इसके बाद संशोधन 221 है जो यद्यपि शाब्दिक है पर उसमें कुछ सार है। जिस रूप में आज सभा के समक्ष डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को प्रस्तुत किया है उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि संघ सरकार प्रत्येक राज्य का बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करेगी। विधि सम्बन्धी पदावली तथा संविधानिक वार्ता के अनुसार मैं समझता हूं कि कदाचित् यह सही नहीं है। इसका यह भी आशय हो सकता है कि जब ये दोनों बातें हों तभी संघ हस्तक्षेप कर सकता है। मेरे वकील मित्र "और" और "अथवा" शब्द में जो अन्तर है उसे समझ गये होंगे और जिस रूप में अनुच्छेद 277-क आज वर्तमान है उस रूप में उसका यह अर्थ होगा कि जब तक दोनों बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति राज्य में न हो तब तक उस राज्य के विषयों में संघ सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती। पर यदि आप "अथवा" शब्द कहें तो उसका अर्थ यह होगा कि इनमें से किसी आकस्मिकता पर चाहे वह बाह्य आक्रमण हो या आभ्यन्तरिक विद्रोह या अराजकता संघ सरकार को हस्तक्षेप करने की सक्षमता होगी।

संशोधन संख्या 221 के सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कह चुका हूं कि वह क्यों आवश्यक है और इस संविधान में जो योजना रखी गई है उससे आपका जो कुछ आशय है उसके प्रति ईमानदार रहने के विचार से—संपूर्ण प्रभुत्व संपत्त लोकतंत्रात्मक गणराज्य की वह योजना जिसमें केवल प्रान्तीय स्वायत्तता को उन्नत करने ही का प्रयास नहीं किया गया है बल्कि ग्राम पंचायतों के विकास का भी प्रयास है—ग्राम पंचायत से लेकर ऊपर प्रान्तीय स्वायत्तता की चोटी तक। अत: राष्ट्रपति अथवा संघ सरकार को किसी आभ्यन्तरिक अशान्ति में हस्तक्षेप करने के अधिकार को देना पूरे संविधान की भावना के विरुद्ध होगा। केवल विद्रोह या अराजकता होने पर ही संघ के राष्ट्रपति को राज्य के विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति दी जाये।

अब अनुच्छेद 278 को लेते हुए मैं सभा से निवेदन करूंगा कि यदि उनकी ऐसी इच्छा है तो वे ध्यानपूर्वक सावधानी से सुनें। यह अनुच्छेद, 278 भाग 11 में जो अनुच्छेद पहले आ चुके हैं और आज जो अनुच्छेद डॉ. अम्बेडकर पेश कर चुके हैं उनके समान ही हैं। और जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने अभी थोड़ी देर पहिले संशोधनों को पेश करते समय कहा था इन सब पर साथ-साथ विचार करना चाहिये। आज सभा के समक्ष जो नया मसौदा रखा गया है उसमें कुछ परिवर्तन हैं—वे परिवर्तन जो अनुच्छेद 278 के उस रूप से मिलान करने पर, जो संविधान के मसौदे में था, पाये जाते हैं। सभा के समक्ष वर्तमान अनुच्छेद 278 में राष्ट्रपति को संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 278 में दी गई शक्तियों से अधिक शक्तियां देने का प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम तो राष्ट्रपति को केवल राष्ट्रपाल या राज्य के शासक से प्रतिवेदन मिलने पर ही अनुच्छेद 278 के अधीन कार्यवाही करने की शक्ति नहीं मिलती है वरन अन्यथा भी। यह 'अन्यथा' क्या है, केवल ईश्वर ही जानता है। कल से इन सब अनुच्छेदों और आज पेश किये गये संशोधनों को पढ़ने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि हम इस कार्यवाही को सच्चाई के साथ नहीं कर रहे हैं। हम यहां लोकतन्त्र के प्रतिनिधि, अभी हाल में विदेशी दास्ता

से छुटकारा पाकर अपनी मातृभूमि का संविधान बनाने के लिए गंभीर होकर गौरवपूर्वक बैठे हुए कुछ उपबन्धों के कुछ अनुच्छेदों को, जिन्हें हम पारित कर चुके हैं, रद्द करने तथा निष्फल करने के लिए बहाने स्वीकार कर रहे हैं। मेरे विचार से इस कार्यवाही को करने का यह प्रकार नहीं है। यदि हम यह कहें "यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल या राज्य के शासक से प्रतिवेदन प्राप्त होता है" तो बहुत ही अच्छा हो। आखिर हम यह तो विनिश्चित कर ही चुके है कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्ति होगा। यदि ऐसा है तो क्या राष्ट्रपति अपने स्वयं मनोनीत किये गये व्यक्ति में विश्वास नहीं कर सकता है? यदि अपने मनोनीत किये गये व्यक्ति में वह विश्वास नहीं कर सकता है तो हम अपनी सरकार को समाप्त करें और अपने-अपने घर जायें—हम इस सभा को बन्द करें और अपने-अपने घर जायें। हमारे लिये यह स्थान नहीं है—बाजार में घूमें या गलियों में घूमें—जहां चाहें वहां जायें पर इस सभा में न आयें। ऐसी दशा में सरकार को समाप्त कर देना चाहिये और उसे कार्य प्रकार्य करने का कोई अधिकार नहीं होगा। मैं कड़े शब्दों का, कटु शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं पर मुझे विश्वास है कि ऐसे अवसर पर कटु शब्द बहुत आवश्यक हैं। कभी-कभी निर्दय होना भी आवश्यक हो जाता है और यदि आज मुझमें कुछ कटुता आ गई हो तो सभा मुझे क्षमा करेगी। अतः श्रीमान् "अथवा अन्यथा" शब्दों के अपमार्जन का प्रयास करते हुये मैंने संशोधन संख्या 224 को पेश किया है। मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति को तभी कार्यवाही करने की शक्ति दी जानी चाहिये जबकि राज्यपाल या राज्य का शासक उसको यह सूचना दे कि आपात उत्पन्न हो गया है अथवा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है इत्यादि इत्यादि—पर अन्यथा नहीं। यह "अन्यथा" क्या बला है? क्या आपका यह कहने का आशय है कि यह मंजूर करते हुये भी कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रि परिषद् की मंत्रणा पर कार्यवाही करेगा क्या वह अपने निर्णय के आधार पर ही हस्तक्षेप कर सकता है—एक ऐसा निर्णय जिसे शायद उसके मंत्रि परिषद् की मंत्रणा द्वारा दृढ़ता प्राप्त हो चुकी हो पर जिसके लिये राज्य के राज्यपाल या शासक का प्रतिवेदन न हो। यह निन्दनीय कार्य है जो उस सीमित प्रान्तीय स्वायत्तता को भी निष्फल कर देता है जिसका उपबन्ध हमने इस संविधान में किया है और मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा कि वह इस कार्य की मूर्खता, दृष्टता और आपराधिकता को समझने की यथेष्ट सद्बुद्धि इस सभा को दे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल) : आपराधिकता, इसमें क्या अपराध है?

***श्री एच.वी. कामतः** राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल अथवा शासक के प्रतिवेदन पर ही नहीं वरन अन्यथा हस्तक्षेप करने की शक्ति देना एक संविधानिक अपराध है। "अन्यथा" दुष्टतापूर्ण शब्द है। इस प्रसंग में यह शब्द शरारत से भरा हुआ है और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि यह शब्द इस अनुच्छेद से निकाल दिया जाये। यदि ईश्वर आज हस्तक्षेप नहीं करता है तो मुझे विश्वास है कि निकट भविष्य में ही वह उस समय हस्तक्षेप करेगा जबकि वस्तु-स्थिति और भी अधिक भयंकर हो जायेगी और हम सब की आंखें जितनी आज खुली हुई हैं उससे अधिक खुलेंगी।

मैं यह कह रहा था कि राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर ही कार्यवाही करने की शक्ति राष्ट्रपति को दी जाये। यहां मैं यह कहूंगा कि

[श्री एच.वी. कामत]

अनुच्छेद 188 के सम्बन्ध में जिस प्रकार की भाषा थी उसको हमने जानबूझ कर बदला है और अधिक लचीली बना दी है। अनुच्छेद 278 के मूल मसौदे में कहा गया था कि अनुच्छेद 188 के अधीन राज्य के राज्यपाल द्वारा निकाली हुई उद्घोषणा को प्राप्त कर यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है इत्यादि इत्यादि। हम अनुच्छेद 188 को देखें कि उसमें क्या कहा गया है। उसको अब अपमार्जित करने का प्रयास किया गया है और मुझे आशा है कि उसको अपमार्जित कर दिया जायेगा–इसके प्रति कोई झगड़ा नहीं है। यदि सभा अनुच्छेद 188 को देखने का धैर्य रख सकती है तो उस अनुच्छेदों में कहा गया था कि राज्य के राज्यपाल को यह समाधान हो जाना चाहिये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जिससे राज्य की शान्ति और प्रशान्ति शंकास्पद हो गई है और इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य का शासन चलाना सम्भव नहीं रहा। अनुच्छेद 188 में इस योजना को रखा गया था और अनुच्छेद 278, अनुच्छेद 188 के परिणामस्वरूप था। मेरी बुद्धि के अनुसार, विधि अथवा संविधान के क्षेत्र में मेरी अप्रशिक्षित बुद्धि के अनुसार अनुच्छेद 278 में अनुच्छेद 188 का पूर्ण अर्थ नहीं आता है। प्रस्थापित अनुच्छेद में यह निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। "यदि राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है। जिसमें कि उस राज्य का शासन इस संविधान में उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता"। राज्य की शांति और प्रशान्ति के संकट में पड़ने की ओर निर्देश नहीं किया गया है। अत: इस सम्बन्ध में सूची 4 (द्वितीय सप्ताह) का मेरा संशोधन संख्या 225 है जिसमें इन शब्दों के समावेश कराने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रपति का समाधान हो जाना चाहिये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जिसमें राज्य की शांति और प्रशान्ति शंकास्पद हो गई है और न कि "अथवा" इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य का शासन नहीं चलाया जा सकता। आज जो अनुच्छेद हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है उसमें घोर संकट छिपे हुये हैं। संकट ये हैं कि मंत्रिमंडल को संकटावस्था को सुलझाने के बहाने अथवा किसी राज्य में प्रचलित कुशासन में सुधार करने या ठीक करने के बहाने राष्ट्रपति इस अनुच्छेद 278 की शरण ले सकेगा। मुझे विश्वास है कि किसी खास राज्य में पैदा हुई मंत्रिमंडल की संकटस्थिति को सुलझाने के लिए यह अनुच्छेद नहीं है। इसका उपचार तो अन्यत्र है, इसका उपचार तो राज्यपाल द्वारा विधानमंडल के विघटन में तथा निर्वाचकगण के निर्देश में है। अनुच्छेद 153 द्वारा विधान-मंडल के विघटन करने और नये निर्वाचनों के लिए आदेश देने की शक्ति राज्यपाल को दे दी गई है। केवल संकटस्थिति या विधानमंडल द्वारा मंत्रिमंडल में अविश्वास का प्रस्ताव—यहां तक कि प्रस्ताव की पुनरावृत्ति भी संघ सरकार के राष्ट्रपति को हस्तक्षेप करने या आपात की उद्घोषणा करने की शक्ति नहीं देते हैं। संसार में कहीं भी ऐसा नहीं होता है। यदि आप नया उदाहरण स्थापित करना चाहते हैं तो ऐसा करने के लिए आपका स्वागत है परन्तु कार्यपालिका को अनावश्यक, अनचाही बर्बरतापूर्ण और तानाशाही शक्तियों से सुसज्जित करने से जो दुर्घटनायें होती हैं उनसे हम सतर्क रहें। उन देशों का क्या अनुभव है जहां कार्यपालिका को ये शक्तियां दे दी गई हैं? कल मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यह कहा था कि ये आपात के उपबन्ध

बीमार संविधान के अनुच्छेद 48 के कुछ-कुछ समान हैं पर वे उस बात को छोड़ गये जो मैंने कही है। मैने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि जर्मनी के तीसरे रीश के बेमार संविधान के उसी अनुच्छेद 48 का प्रयोग हरी हिटलर ने जर्मनी में लोकतन्त्र का नाश करने और अपनी तानाशाही स्थापित करने में किया था। ठीक है, यदि हमारा लक्ष्य इस उद्देश्य की ओर है, यदि हम इस देश में तानाशाही चाहते हैं तो इनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। सब तरह से उसे रखिये और वैसा ही कहिये, बनिये, सीधे आइये, छल न करिये, अपनी कार्यवाहियों में कपट न करिये। यह हमें शोभा नहीं देता है—यह हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है कि एक अनुच्छेद में एक बात कहें और दूसरे अनुच्छेद में बिलकुल ही भिन्न बात कहकर पहली बात को रद्द करने का प्रयास करें। इस कारण मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 278 का यह खंड (1) जिस रूप में है उस रूप में न रहे। मैं आशा करता हूं कि सभा इस अनुच्छेद पर सच्चाई के साथ विचार करेगी—बहुत गंभीर विचार करेगी ओर अनुच्छेद 278 के खंड (1) के उपबन्धों पर पक्का फैसला कर उसका ठीक-ठीक संशोधन करेगी। अन्यथा इन भविष्य में घोर कष्टों में प्रवेश कर रहे हैं। हम अपने मार्ग में स्वयं कपट जाल बिछा रहे हैं जिसमें हम फंस जायेंगे और कहीं शरण नहीं मिलेगी। यदि इस अनुच्छेदों को जैसे वे हैं वैसे ही स्वीकार कर लिया जाता है तो सारा का सारा संविधान संकट में पड़ जायेगा उनके कारण इतना नहीं जो गलियों में आन्दोलन कर रहे हैं जितना कि उनके कारण जिनके हाथ में शक्ति है। यदि सभा चाहती है कि ऐसा हो तो वह इस बात को कहे। प्रस्तावना में हम इस बात को न कहें कि हमारा लोकतंत्रात्मक गणराज्य होगा। यहां तो हम लोकतंत्र की जड़ खोदने का प्रयास कर रहे हैं। 278-क पर मेरा ऐसा कोई संशोधन नहीं है पर मैं यह कहूंगा कि केवल बड़े अवसरों पर ही अनुच्छेद 278 के अधीन उद्घोषणा निकाली जाया करे अर्थात् जबकि राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर राष्ट्रपति का समाधान हो जाये। "अथवा अन्यथा" नहीं रहना चाहिये। शासक अथवा राज्यपाल से अन्यथा तो केवल एक हंसी मजाक सा होगा। दूसरी बात यह है कि प्रतिवेदन से राष्ट्रपति का केवल यही समाधान न हो कि इस संविधान के प्रावधानों के अनुसार राज्य की सरकार नहीं चलाई जा सकती है वरन यह भी हो कि राज्य की शांति और प्रशान्ति घोर संकट में है। केवल इसी अवस्था में राष्ट्रपति को किसी संविधानिक एकक के विषयों में हस्तक्षेप करने की शक्ति देनी चाहिये अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 278-क उन विभिन्न विषयों का साधक अनुच्छेद है जो अनुच्छेद 278 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा करने के पश्चात् उत्पन्न होंगे, अतः जो शर्तें मैंने रखी हैं यदि उनका समाधान हो जाता है तो अनुच्छेद 278-क से मेरा कोई झगड़ा नहीं है जो केवल परिस्थितियों को स्पष्ट करने और अनुच्छेद 278 के उपबन्धों को और अधिक विस्तृत करने का प्रयास करता है।

संक्षेप में, अनुच्छेद 143 के सम्बन्ध में राज्यपाल की स्वविवेक शक्ति नहीं रहनी चाहिये, चूंकि हम अनुच्छेद 175 और 188 अब समाप्त कर चुके हैं। शायद सभा यह भूल गई है कि डॉ. अम्बेडकर ने यह आश्वासन दिया था कि अनुच्छेद 175 और 188 के पश्चात् इस विषय को लिया जायेगा। सभा का आह्वान करने और विघटन करने की स्वविवेक शक्ति के अपमार्जन के लिए हम अनुच्छेद 153

[श्री एच.वी. कामत]

पारित कर ही चुके हैं। अन्य जो अनुच्छेद रह गये थे वे 175 और 188 थे। 188 को हम अपमार्जित कर चुके हैं। और 175 में हम राज्यपाल को स्वविवेक शक्तियों से वंचित कर चुके हैं। अतः अनुच्छेद 143 का संशोधन होना चाहिये। उस समय मैंने एक संशोधन पेश किया था जिसको अब पूर्ण बल प्राप्त है जो अब लिया जा सकता है और मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति द्वारा उस अनुच्छेद का ठीक रूप से समावेश कर लिया जायेगा।

अनुच्छेद 277-क और 278 के सम्बन्ध में सभा को एक गंभीर स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह अनुच्छेद 277-क और 278 के उपबन्धों पर शांति, सच्चाई, गहनता और निष्पक्षता से विचार-विमर्श करे और इनका इस प्रकार संशोधन करे कि जिस संविधान को हम बना रहे हैं उसका श्रेय हम पर रहे और जिस घोषणा पत्र को पंडित नेहरू ने दिसम्बर 1946 में पेश किया था उसमें दिये हुये उच्च सिद्धान्तों से संविधान च्युत न हो और उन आदर्शों की पवित्रता से, उन उच्च सिद्धान्तों से जो घोषणा पत्र में निर्धारित किये गये थे वह पृथक न हो। सबसे बड़ी बात यह है कि वह संविधान, जिसे हम इस शताब्दि के प्रथम अर्द्ध भाग की अंतिम वर्ष में लागू कर रहे हैं—अर्थात् आगामी वर्ष में, वह हमारे लाखों देश भक्तों के श्रम और कष्टों की प्रतिष्ठा का मुकुट होगा और एक उस सच्चे लोकतंत्र की आधारशिला होगा जो दूसरे देशों के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, हम तीन अनुच्छेदों पर एक साथ विचार कर रहे हैं 188, 277-क और 278 और मैं समझता हूं कि इस संविधान में ये अनुच्छेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। मैं स्वयं प्रसन्न हूं कि अनुच्छेद 188 का अपमार्जन किया जा रहा है। यह सत्य है कि मैंने एक संशोधन रखा था जो छपी सूची में संख्या 160 पर है जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि राज्यपाल को उद्घोषणा निकालने की शक्ति नहीं दी जानी चाहिये केवल राष्ट्रपति ही ऐसा व्यक्ति हो जिसे यह प्राधिकार हो। अतः मैं इस अपमार्जन से सहमत हूं, पर इस अपमार्जन के साथ-साथ अनुच्छेद 278 और अधिक व्यापक बना दिया गया है। अनुच्छेद 188 में यह कहा गया था कि किसी समय किसी राज्य के राज्यपाल का समाधान हो जाये कि गंभीर आपात उत्पन्न हो गया है जो राज्य की शांति और प्रशान्ति को शंकास्पद कर देता है तभी उसको उद्घोषणा निकालने की शक्ति हो और अनुच्छेद 278 उस घोषणा की एकरूपता के लिये था। पर यह नया मसौदा इस बात पर विचार नहीं करता है। उसमें यह कहा गया है "राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर अथवा अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये" तो इस अनुच्छेद के अधीन वह कार्यवाही कर सकता है। यह राष्ट्रपति को बहुत व्यापक अधिकार देता है। किसी गंभीर आपात का होना आवश्यक नहीं है। यदि राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाये कि इस संविधान के अनुसार सरकार नहीं चलाई जा सकती है तो वह अनुच्छेद 278 के अधीन उद्घोषणा निकाल सकता है। संघ के प्रत्येक एकक का बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षण करने के उत्तरदायित्व को अनुच्छेद 277-क संघ पर डालता है और यहां भी केवल बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति ही है—और फिर आभ्यन्तरिक अशान्ति बहुत

ही व्यापक शब्द है। अनुच्छेद में अराजकता और यहां तक कि आपात भी नहीं कहा गया है। मैं स्वयं यह अनुभव करता हूं कि अनुच्छेद 278 में दी हुई शक्तियां बहुत अधिक व्यापक हैं। मुझे इस बात की खुशी है कि अन्तिम प्राधिकार संसद् में निहित है और इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि यह अनुच्छेद राज्य की पूर्ण स्वायत्तता को रद् करता है। यह वास्तव में एक बड़ा महत्वपूर्ण रक्षा कवच है क्योंकि सब कुछ होने के बाद भी प्रान्त के प्रशासन का अन्तिम उत्तरदायित्व संसद् पर ही है और वहीं अन्त में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न बना रहा। उस विषय को संसद् के समक्ष रखे बिना राष्ट्रपति भी कुछ नहीं कर सकता है यद्यपि दो महीने तक वह जो चाहे सो कर सकता है। अत: मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद की मैं इतनी कटु निन्दा नहीं कर सकता हूं जितनी मेरे मित्र श्री कामत ने की है। पर मैं यह समझता हूं कि इन अनुच्छेदों से हम राज्यों की स्वायत्तता को एक तमाशा बना रहे हैं। ये अनुच्छेद राज्यों की सरकार को केन्द्रीय सरकार की दासता में ला पटकेंगे। उनको कोई भी स्वतंत्रता न रहेगी। मैं यह नहीं चाहता हूं कि राज्य एक ओर तने रहें ओर केन्द्र दूसरी ओर; राज्यों के लिये कुछ न कुछ स्वायत्तता तो होनी ही चाहिये और मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 277-क और 278 इस स्वायत्तता को छीन लेते हैं। मेरे विचार से यदि इन अनुच्छेदों को न भी रखा जाये तो भी अनुच्छेद 275 और 276 हैं जो कार्यपालिका को आपात से निपटने के लिए आवश्यक शक्तियां देते हैं। यदि आपात पैदा हो जाता है तो अनुच्छेद 275 के अधीन आप उद्घोषणा निकाल सकते हैं और अनुच्छेद 276 द्वारा आप प्रान्त सम्बंधी विषयों पर विधान बना सकते हैं। अत: अनुच्छेद 275 और 276 पूर्ण रूप से पर्याप्त हैं। अनुच्छेद 277-क और 278 का पुर:स्थापन करना वांछनीय नहीं है और वास्तव में ये अनुच्छेद हमारे ऊपर इस दोष के आरोपण का कारण हैं कि हम प्रान्तीय स्वायत्तता को एक तमाशा बना रहे हैं। अनुच्छेद 278 में आखिर क्या कहा गया है? यदि आप सन् 1935 के भारतीय सरकार के अधिनियम को देखें तो आपको विदित हो जायेगा कि यह अनुच्छेद उस अधिनियम की धारा 93 की लगभग अक्षरश: प्रति है सिवा इसके कि इंग्लैंड की संसद के स्थान में आपने भारतीय संसद् के दोनों सदन रख दिया है और छ: महीने की कालावधि के स्थान में आपने दो महीने की कालावधि रख दी है। शेष बिल्कुल वहीं है। और इससे भी ज्यादा मजे की बात यह है कि संशोधित रूप में भारतीय सरकार के वर्तमान अधिनियम में इस विशिष्ट अनुच्छेद को निकाल दिया गया है। अत: एक प्रकार से वर्तमान भारतीय सरकार का अधिनियम जिसके अनुसार इस समय हम पर शासन हो रहा है वह इस अनुच्छेद से जिसे हम अब पारित कर रहे हैं अधिक उन्नतिशील है, क्योंकि भारतीय सरकार के वर्तमान अधिनियम में धारा 93 नहीं है और अपने नये संविधान में हम उसका फिर पुन:स्थापन कर रहे हैं। मेरा यह निश्चित विचार है कि यह एक प्रतिगामी कदम है। मैं बहुत खुश होता यदि ये विशिष्ट अनुच्छेद यहां नहीं होते। यदि आप इन दो अनुच्छेदों को रखना ही चाहते हैं तो मैं प्रार्थना करूंगा कि कम से कम "अन्यथा" शब्द को तो निकाल ही दिया जाये। राज्य विषय में राष्ट्रपति द्वारा हस्तक्षेप किसी प्रकार से भी न्यायपूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि कम से कम राज्यपाल उससे प्रतिवेदन न करे जो स्वयं उसका ही नामनिर्देशित व्यक्ति है। पर यहां अपनी इच्छानुसार हस्तक्षेप करने की उसे शक्ति है चाहे राज्यपाल की ऐसी सम्मति न हो और प्रान्तीय मंत्री उससे असहमत हों।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, एक बात का मैं स्पष्टीकरण चाहूंगा। यदि कुछ लोग राज्यपाल को बलपूर्वक बन्दी बना लेते हैं तो केन्द्र को वह कैसे सूचना दे सकता है?

***एक माननीय सदस्यः** राज्यपाल बन्दी नहीं किया जा सकता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, 'बन्दी' शब्द पर मुझे खेद है। उसका अपहरण किया जा सकता है तो फिर क्या होगा?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यदि ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती है तो अनुच्छेद 275 है जिसके अधीन उद्घोषणा निकाली जा सकती है। पर यहां तो राज्यपाल से परामर्श तक नहीं है। आप उसके प्रतिवेदन पर आगे नहीं बढ़ते हैं परन्तु राष्ट्रपति अपनी स्वयं की इच्छा से आगे बढ़ता है। मैं यह भी समझता हूं कि विधि पुस्तक में चाहे आप इन दो अनुच्छेदों को रख दें पर कोई भी राष्ट्रपति इन पर चलने का साहस नहीं करेगा क्योंकि इससे अराजकता हो जायेगी। लोग भड़क उठेंगे और पूछेंगे "आप क्यों हस्तक्षेप करते हैं जबकि स्वयं राज्यपाल तक यह नहीं समझता कि यह आवश्यक है?" अतः इस अनुच्छेद के अनुसार वह कार्यवाही नहीं कर सकता। अतः मैं मसौदा-समिति से निवेदन करता हूं कि "अन्यथा" शब्द को निकाल दिया जाये। राष्ट्रपति राज्यपाल के प्रतिवेदन पर आगे बढ़े जो उसी का मनोनीत किया हुआ व्यक्ति है। विधानमंडल द्वारा राज्यपाल वहां नहीं बिठाया गया है। वह स्वयं राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया हुआ व्यक्ति है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह राज्यपाल को हटा सकता है और उसके स्थान में अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। कम से कम स्वायत्तता और लोकतंत्र का कुछ चिन्ह तो रहने दीजिये। यदि राज्यपाल विरोध करने लगता है तो उसे हटा दीजिये और उसके स्थान में दूसरा रख दीजिये। पर आप आपात की उद्घोषणा करें इससे पूर्व उसे प्रतिवेदन तो कर लेने दीजिये। राष्ट्रपति यह तो कह सके कि राज्यपाल के प्रतिवेदन पर वह आगे बढ़ा है। अतः "अन्यथा" शब्द को निकाल देना चाहिये और ऐसा करने से कम से कम राज्यपाल को हस्तक्षेप के लिये कुछ न कुछ बहाना तो मिल जायेगा।

इसके बाद श्रीमान्, यह अनुच्छेद विधान-मंडल और मंत्रिमंडल तथा राज्यपाल तक की भी अवहेलना करता है और राष्ट्रपति तथा संसद् प्रान्त के शासक बन जाते हैं। यदि आप स्पष्ट यह कह देते "हम एकात्मक संविधान बना रहे हैं" तो मुझे कोई ख्याल नहीं होता। वह कहीं अच्छा होता। आप देश में 250 जिले बना सकते थे और केवल एक केन्द्रीय संसद्।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** खूब, खूब।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** पर ऐसे सूत्र को हम अस्वीकार कर चुके हैं और स्वायत्तशासी राज्यों के सहित हम इस फेडरल संविधान को स्वीकार कर चुके हैं। इसलिये राज्यों के साथ आपको कम से कम कुछ सम्मानपूर्वक बर्ताव तो करना चाहिये। अतः मैं आपके सामने सुझाव रखूंगा कि आप इस अनुच्छेद 278 में रूपभेद करें। इसके अधीन आपने यह शक्ति दे दी है कि प्रत्येक छह महीने के पश्चात संसद् उद्घोषणा की पुष्टि कर सकती है और इस प्रकार तीन वर्ष तक उद्घोषणा

बनी रह सकती है। इन तीन वर्षों में क्या होगा? उदाहरणार्थ मेरे संयुक्तप्रान्त को ही लीजिये। यह मैं नहीं कह सकता कि किस आधार द्वारा, पर हो सकता है कि गुप्तचर विभाग की सूचना पर राष्ट्रपति ने आपात स्थिति की उद्घोषणा करने का विनिश्चय किया, मंत्रिमंडल, राज्यपाल और विधानमंडल को समस्त शक्तियों से वंचित कर दिया और सारी शक्तियां अपने और संसद् पर ले लीं तो वह अपने किसी मनोनीत व्यक्ति को उस प्रान्त पर शासन करने के लिए रख सकता है। तीन वर्ष तक वह इस प्रकार चला सकता है और प्रत्येक छः माह के पश्चात् वह उस उद्घोषणा को पारित करा सकता है। पर तीन वर्ष के पश्चात् क्या होगा। तीन वर्ष के पश्चात् जब उसकी शक्तियां समाप्त हो जायेंगी तो क्या वही विधानमंडल और वही मंत्रिमंडल फिर आयेगा? मान लीजिये विधान-मंडल के प्रारम्भ के छह महीने के बाद आप इस तरीके को शुरू करते हैं और तीन साल तक आप उसे चलाते हैं। तो इस प्रकार साढ़े तीन वर्ष बीते। और फिर डेढ़ साल रहा जिसके बाद फिर वही राज्यपाल होगा और वही मंत्रिमंडल बनेगा। तीन साल तक शक्ति से वंचित रहकर क्या वे अधिक योग्य और बुद्धिमान बन गये? मेरे विचार से इस संविधान में यह एक बड़ी भारी कमी है। बंगाल में हम कष्ट देख ही रहे हैं: हम यह आशा कर रहे हैं कि वहां नये चुनाव होंगे और नया मंत्रिमंडल बनेगा। अतः मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति को विधानमंडल के विघटन करने का प्राधिकार दिया जाये, वहां नये निर्वाचन करने और नया मंत्रिमंडल बनाने का प्राधिकार दिया जाये जिससे कि आठ महीने के पश्चात् उस प्रान्त में अच्छा और नया मंत्रिमंडल बन सके। वही विधानमंडल और वही मंत्रिमंडल जिसे तीन वर्ष तक अक्षम समझा गया, जिसकी शक्तियां राष्ट्रपति द्वारा ले ली गई हैं क्या वह एक दिन के लिये भी शासन कर सकेगा? यदि ऐसा नहीं है तो मंत्रिमंडल के विघटन करने अथवा दूसरा मंत्रिमंडल बनाने की शक्ति कहां है? ऐसी कोई शक्ति नहीं है। इस अनुच्छेद में यह एक बड़ी भारी भूल है और इसको ठीक कर देना चाहिये। अतः खंड (4) में एक परन्तुक जोड़कर मैं एक संशोधन का सुझाव करता हूं जिसमें यह कहा गया है:

(परन्तु यदि राष्ट्रपति ठीक समझे तो इस कालावधि में विधानमंडल के विघटन और उसके बाद नये साधारण निर्वाचन के लिये आदेश दे सकेगा और उद्घोषणा उस दिन से प्रभावशून्य हो जायेगी जिस दिन नये निर्वाचित विधानमंडल का समारम्भ होता है।)

जो कुछ होता है वह यह है। राष्ट्रपति ने प्राधिकार स्वयं अपने ऊपर ले लिया क्योंकि या तो उसने यह देखा कि राज्य में गंभीर आपात है अथवा कोई ऐसी अशान्ति है जिसे मंत्रिमंडल नहीं दबा सकता है और इस कारण उसका हस्तक्षेप आवश्यक है। यदि वह मंत्रिमंडल सक्षम है तो आपात के पश्चात वह उसको फिर शक्तियां दे देता है, परन्तु यदि वह यह समझता है कि वह मंत्रिमंडल सक्षम नहीं है तो वह यह करता है कि विधानमंडल के विघटन का आदेश दे देता है और नये निर्वाचन करता है। शायद यही हम पश्चिमी बंगाल में कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि इससे हमें शिक्षा लेनी चाहिये। अतः मैं समझता हूं कि चाहे हम इन शक्तियों को ले लें पर प्रान्तों को हमें कुछ लोकतंत्र देना चाहिये। अतः ईश्वर के लिए खंड (4) के इस परन्तुक को हटा दीजिये जो राष्ट्रपति को लगातार तीन वर्ष के लिये प्रान्त को स्वायत्तता से वंचित करने की शक्ति देता है बिना किसी ऐसे उपबन्ध के बनाये कि इसके पश्चात् क्या होगा। मसौदा-समिति इस प्रश्न पर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

सावधानी से विचार करे। मैं ही केवल एक ऐसा व्यक्ति नहीं हूं तथा मेरे मित्र श्री कामत ही एक ऐसे व्यक्ति नहीं हैं, वरन इस सभा में हमारे बहुत से नेता भी इसी विचार के है। मैं देखता हूं कि पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त जैसे व्यक्तियों ने इस अनुच्छेद पर संशोधन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार डॉ. एच.एन. कुंजरू ने भी। ये व्यक्ति भी इस अनुच्छेद के अपमार्जन के पक्ष में हैं। मैं आशा करता हूं कि उन्होंने अपने बदले नहीं होंगे और इस विषय में वे मेरा समर्थन करेंगे।

***कर्नल बी.एच. जैदी** (रामपुर-बनारस-राज्य): अध्यक्ष महोदय, इन अनुच्छेदों के उपबन्धों पर किसी विवरणपूर्ण वाद-विवाद में पड़ने के लिए मैं यहां नहीं आया हूं। केवल एक बात है जिसे मैं संक्षेप में कहना चाहूंगा और वह यह है। संसार के इतिहास में एक बहुत ही बड़ी दु:खपूर्ण दुर्घटना के अवसर पर यह बताया जाता है कि जार्ज बर्नाडे शा ने यह कहा था कि बहुत नेक होना भी संकटजनक है। नेक होना बुरी बात नहीं है पर शा के विचार से बहुत नेक होना संकटजनक है। इसी प्रकार मैं समझता हूं कि बहुत अधिक लोकतंत्रात्मक होना भी हमारे देश के लिए संकटजनक हो सकता है। अपने वाद-विवाद में तथा अपने संविधान निर्माण कार्य में हम कुछ यथार्थवाद को भी स्थान दें। हम केवल एक वकील या अधिवक्ता के दृष्टिकोण से ही बातों की कतरव्यौंत और विश्लेषण करते चले जा रहे हैं। हमारे स्वभाव में बाल की खाल खींचना तो है ही, पर इस बाल की खाल खींचने और बहुत अधिक विधिवत् होने की प्रवृत्ति को प्रशासन की यथार्थताओं और राजनैतिक दुर्व्यवस्था का प्रबन्ध करने में तिलांजलि दे देनी चाहिये। अतीत काल में हमारे देश में क्या संकट था? क्या घातक प्रवृत्तियों से हमें क्षति हुई है या नहीं? क्या केन्द्र से बार-बार विभिन्न एककों ने पृथक होने का प्रयत्न नहीं किया? जैसा कि भविष्य में मुझे कुछ धुंधला सा दिखाई दे रहा है सबसे बड़ा संकट यह नहीं है कि केन्द्र बहुत अधिक हस्तक्षेप करेगा वरन यह है कि एकक केन्द्र के मार्गप्रदर्शन का विरोध करेंगे। इन दो बातों में से मैं इस बात में विश्वास नहीं करता हूं कि राष्ट्रपति राज्यपाल को हटाने के लिए उत्सुक होगा वरन इसमें विश्वास करता हूं कि प्रान्तों में बहुत काल तक कुशासन रहेगा और केन्द्र से रोकथाम न होने पर प्रान्त को इसका दु:ख होगा। अन्तिम वक्ता ने कहा था कि मान लीजिये गुप्तचर के प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रपति यह विनिश्चय करता है कि विधि और व्यवस्था भंग हो चुकी है और किसी प्रान्त में गंभीर आपात है तो वह उस राज्य के शासन को अपने हाथ में ले सकता है और उस प्रान्त का निरपेक्ष रूप से शासक हो सकता है। श्रीमान्, यदि मेरे देश में यह हो सकता है तो हम लोकतंत्र के लायक नहीं हैं। एक पूर्ण मानव शरीर को लीजिये जिसके सब अंग प्रत्यंग हों और सब बातें पूर्णरूप से ठीक दिखाई देती हों, पर यदि उस शरीर में से प्राण पखेरू उड़ गये हों तो वह ठीक नहीं है, हाथ काम नहीं कर सकते, पैर चल नहीं सकते, जीभ बोल नहीं सकती क्योंकि आत्मा निकल चुकी है। यदि संसार का सर्वोत्तम संविधान हमारे यहां है परन्तु यदि देश में लोकतंत्रात्मक भावना नहीं है तो वह संविधान अवश्य भंग होगा। यह कहने से हमारा क्या आशय है कि राष्ट्रपति अपने हाथों में शक्तियां ले लेगा और तानाशाह बन जायेगा? और ये तीस करोड़ भारतीय क्या चुपचाप हाथ पर

हाथ रखे बैठे रहेंगे? यदि वे चुपचाप बैठे रहेंगे तो फिर वे ऐसा करेंगे ही चाहे आप कैसा ही संविधान बनायें। हम यह समझते हैं कि हमारा राजनैतिक कल्याण केवल विधि में ही निहित हैं, लोकमत में नहीं जो बहुत जागरूक, सु-अभिज्ञ तथा सतर्क है। मैं समझता हूं कि यदि हम अपना विश्वास केवल लिखित संविधान में ही अटल समझते हैं बिना इसके कि अपने नये स्वामियों–भारत की जनता को शिक्षित बनाये तब तो हम इसमें भूल कर रहे हैं। किसी भी संविधान से जो केवल कागज पर ही स्थित है किसी देश का कल्याण नहीं हो सकता है। समुचित लोकतंत्रात्मक भावना के लिए तथा इस अनुभूति के लिये यह देखने का उत्तरदायित्व हम में से प्रत्येक पर है कि देश का शासन ठीक प्रकार से विचारपूर्ण, उन्नतशील लोकतंत्रात्मक आधारों पर चल रहा है हम सबको चेष्टा करनी चाहिये। यदि यह भावना और अपने देश के शासन पर सतर्क दृष्टि नहीं है तो संसार का कोई भी संविधान, चाहे वह स्वयं देवदूत जिब्राइल द्वारा ही बना हुआ क्यों न हो, सफल नहीं हो सकता है। अतः मैं समझता हूं कि आवश्यकता से अधिक आलोचना करने और अपने भावी राष्ट्रपति पर बहुत ही अनावश्यक शंका करने की अपेक्षा हमें अपने देश की ऐतिहासिक प्रवृत्तियों पर विचार करना चाहिये और यह देखना चाहिये कि भविष्य में क्या होने वाला है और फिर यथार्थ रूप में—एक रूप में जिसमें राजनैतिक चातुर्थ, बुद्धिमानी और विचार संतुलन हो हमें संविधान बनाने के कार्य में अग्रसर होना चाहिये। इंग्लैंड को ही लीजिये, श्रीमान्। क्या इंग्लैंड अपने लिखित संविधान में ही पूर्णतया विश्वास करता है? लिखित संविधान से अधिक वह अभिसमयों का प्रयोग करता है। पर हम यह भूल जाते हैं कि अभिसमय अथवा लोकमत नाम की भी कोई वस्तु है और हम भविष्य के बड़े ही आश्चर्यजनक तथा अनोखे स्वप्न की कल्पना करते हुए विधि सम्बन्धी अंतिम सीमा तक पहुंच जाते हैं और जो कुछ हम कल्पना कर सकते हैं उसके लिए उपबन्ध करने का प्रयत्न करते हैं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह प्रावधान हमारे ऐतिहासिक अतीत के विचार से और उन प्रवृतियों के विचार से जो स्पष्ट दिखाई दे रही है पुष्ट, कल्याणकर और आवश्यक है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मुझे खुशी है कि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने इस महत्वपूर्ण उपबन्ध पर सभा में एक बड़ा वाद-विवाद होने की आशा प्रकट की थी। सभा यह तो देख ही चुकी है कि पहले मसौदे और इस प्रस्थापना में एक बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन है और वह मुख्य तथा मूलभूत परिवर्तन यह है कि आपात में कार्यवाही करने के लिए राज्यपाल को हमने कोई शक्ति नहीं दी है। हमने सब आपात सम्बन्धी शक्तियों को राष्ट्रपति और भारतीय संसद् के हाथों में दे दिया है और जहां तक आपात और उद्घोषणा का सम्बन्ध है हमने राज्यपाल को केवल प्रतिवेदन करने वाला प्राधिकारी बना दिया है। यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि यह एक बड़ा ही उग्र परिवर्तन है और एक ऐसा परिवर्तन है जो न तो फेडरेशन के समानुरूप है और न इससे प्रशासन में कुछ लाभ होगा अथवा व्यवहार्य भी नहीं है। कम से कम दो तर्क ऐसे हैं, जिनका सुझाव माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषण में दिया है और जो मेरे इस विचार का समर्थन करते हैं। उनमें से एक यह है कि इस परिवर्तन का भाव फेडरेशन के विचार के विरुद्ध है और दूसरा यह कि संसद् में हम उन उत्तरदायित्व के भार से दब जायेंगे जो स्वभावतः किसी अन्य प्राधिकारी को सौंपा जाना चाहिये। मेरे कुछ मित्र शायद यह कहें कि जब मैं एकात्मक शासन पद्धति के पक्ष में

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

हूं तो मैं राष्ट्रपति अथवा संसद् को अधिकाधिक शक्तियों पर अधिकार रखने को क्यों नहीं चाहता हूं। मेरा उत्तर यह है कि यह न तो तीतर है और न बटेर, यह न तो एकात्मक शासन पद्धति है और न फेडरल शासन पद्धति। यदि आप फेडरेशन का किंचित् चिह्न मात्र रहने देना चाहते हैं तो ऐसे विषयों में आपको राज्य के मुखिया को सारे प्राधिकारों से वंचित नहीं करना चाहिये। जैसा कि दो पूर्व वक्ताओं द्वारा बताया जा चुका है आप केवल राज्यपाल के स्वविवेक अथवा शक्तियों को ही नहीं हथिया रहे हैं जो स्वयं आप ही के द्वारा मनोनीत किया हुआ व्यक्ति है वरन आप मंत्री, राज्य के मंत्रिपरिषद और विधानमंडलों तक को भी बेकार कर रहे हैं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): परन्तु क्या माननीय सदस्य इस बात को भी सोचते हैं कि राज्यपाल निर्वाचित पदाधिकारी नहीं है? वह मनोनीत किया गया व्यक्ति होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यही तो कारण है कि राज्यपाल में राष्ट्रपति को तथा संसद् को भी और अधिक विश्वास करना चाहिये क्योंकि वह प्रान्त के निर्वाचकों की सनक पर निर्वाचित नहीं हुआ है वरन् एक ऐसा व्यक्ति है जिसको राष्ट्रपति ने अपने स्वविवेक द्वारा ठीक, सक्षम तथा योग्य समझा है और ऐसा होने पर यह और भी अधिक तर्कयुक्त हो जाता है कि उसकी निपुणता और योग्यता के समाप्त हो जाने के पूर्व राष्ट्रपति कार्यवाही न करे। राज्यपाल द्वारा प्रयोग में ली जाने वाली जो शक्तियां मूलरूप में विचारी गई थीं यदि वे भी एक पक्ष के लिये रहती, और यह आवश्यक भी था, तो उसका यह आशय होता कि जो व्यक्ति उस स्थान पर है उसको उस परिस्थिति को भरसक रूप से सुधारने का एक अवसर दिया गया है जिसका उसे राष्ट्रपति अथवा संसद् से कहीं अधिक अच्छा ज्ञान है।

इसके बाद, श्रीमान्, इस सुझाव के व्यवहारिक रूप को लेते हुए हम देखते हैं कि प्रान्त के समुचित प्रशासन में अपार कठिनाइयों की संभावना है। यदि राज्यपाल को ये आपात सम्बन्धी शक्तियां नहीं दी जाती हैं तो वह केवल यही करेगा कि राष्ट्रपति को प्रतिवेदन कर देगा कि आपात पैदा हो गया है और उद्घोषणा निकाल देनी चाहिये। इसके पश्चात् उत्तरदायित्व केवल राष्ट्रपति पर ही नहीं आता है वरन् संसद् पर भी आता है और जैसे ही कि एक ऐसी संसद् कार्यारम्भ करती है जिसमें सौ सदस्य हैं तो उसका जो कुछ परिणाम होता है उसकी प्रत्येक व्यक्ति कल्पना कर सकता है। अतः मैं समझता हूं कि यह बहुत ही निर्बुद्धिमत्तापूर्ण है। मेरे मित्र श्री कामत ने कटु भाषा का प्रयोग किया है परन्तु उनका भाषण यद्यपि प्रवाह में बहुत शिथिल था परन्तु उसमें विषय सम्बन्धी तर्क थे और मैं आशा करता हूं कि न तो उनकी भाषा की कटुता और न उनकी अंगचेष्टाओं का अधिक्य ही उनके भाषण की गंभीरता को कम करेगा। जो कुछ उन्होंने कहा है उससे मुझे बड़ी सहानुभूति है और मैं उनके भाषण के एक बड़े सारवत् भाग से सहमत हूं। मैं समझता हूं कि राज्यपाल अथवा प्रान्तीय सरकार अथवा मंत्रियों के साथ यह न्याय नहीं किया जाता है कि प्रान्त में जो बुद्धि तथा योग्यता राज्यपाल अथवा उसके मंत्रियों में है उनको समाप्त किये बिना ही राष्ट्रपति कूद पड़े।

इसके बाद मैं अनुच्छेद 277-क पर आना चाहूंगा। अनुच्छेद 277-क यह उपबन्ध करता है "बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य का

संरक्षण करना, तथा प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये, यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।" यह बड़े उलझन का उपबन्ध है। हम आपात शक्तियों पर विचार कर रहे है। मैं नहीं देख पाता हूं कि जो चर्चा हम कर रहे हैं उसमें इस अनुच्छेद का तर्कसम्मत क्या स्थान हो सकता है। परन्तु यह केवल इसलिये आवश्यक है कि हमारे सामने एक संशोधित मसौदा अनुच्छेद 278 का है जिसके खंड (1) के भाग (ख) में यह कहा गया है "घोषित कर सकेगा कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयोक्तव्य होंगी" और आगे उपखंड (ग) में कहा गया है "राज्य में के किसी निकाय या प्राधिकारी से सम्बद्ध इस संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन को पूर्णत: या अंशत: निलम्बित करने के लिए उपबन्ध सहित ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध बना सकेगा जैसेकि राष्ट्रपति को उद्घोषणा के उद्देश्य को प्रभावी करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई दें।" 277-क के इस पवित्र उपबन्ध से किसी आपात का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वह तो संघ सरकार की ओर से एक पवित्र अभिव्यक्ति है कि वह संविधान की प्रतिष्ठा बनाये रखने और जो विधान इस अधिनियम में निर्धारित किया गया है उसमें अनुचित रूप से हस्तक्षेप न करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे। यदि हम यह उपबंध न करते कि राष्ट्रपति को उस विधान तक को रद्द करने की शक्ति होगी जिसके द्वारा एकक अथवा राज्य की स्थिति और उनको बनाये रखने की प्रत्याभूति की गई है तो मैं समझता हूं कि इस प्रकार के आश्वासन देने की कोई भी आवश्यकता न थी।

अत: श्रीमान्, यह अनुच्छेद केवल इसलिये रखा गया कि हम राष्ट्रपति को उसकी मर्जी के अनुसार स्वयं इस संविधान के उपबन्धों को रद्द करने की शक्ति दे रहे हैं। यदि राष्ट्रपति को ये शक्तियां देना आवश्यक न होता और यदि हम उन शक्तियों को बनाये रखने से संतुष्ट रहते जिनका राज्यपाल 1935 के अधिनियम की धारा 93 के कारण उपभोग करना चला आ रह है तो इस परिवर्तन करने और अनुच्छेद 278 को लाने की आवश्यकता ही न होती। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि यह अच्छा है कि हम राज्यपाल की शक्तियों को बनाये रखें और उसको वहीं शक्तियां दें जिनको हम आवश्यक समझें और जो कि 1935 के भारतीय अधिनियम की 93वीं धारा में दी गई थीं यद्यपि जिस अनुकूलन द्वारा हम पर शासन हो रहा है उसमें से यह धारा अपमार्जित कर दी गई है। मैं समझता हूं कि यह नितांत आवश्यक है कि राष्ट्रपति अथवा संसद् पर हम यह भार आरोपित न करें और इन विषयों का प्रबन्ध करना उनके लिये कठिन बना दें। मान लीजिये कि एक से अधिक राज्य की ऐसी दशा हो जाती है, मान लीजिये आधे दर्जन से अधिक राज्यों की ऐसी दशा हो जाती है तो राष्ट्रपति और संसद् क्या करेंगे? क्या वे अपने सामान्य कर्तव्य का पालन करेंगे या इन राज्यों का प्रबन्ध करंगे? मैं नहीं समझता हूं कि यह व्यावहारिक राजनीति है और न इससे परिस्थिति की वास्तविकताओं का ही हमें परिचय मिलता है। जैसाकि मेरे मित्र श्री जैदी ने कहा था कि हमें अधिक यथार्थवादी होना चाहिये और ऐसी परिस्थितियों की कल्पना नहीं करनी चाहिये जो कभी पैदा ही न हों। श्रीमान्, आखिर विगत इतने वर्षों तक धारा 93 ठीक-ठीक क्रियान्वित होती रही और इस तथ्य के होते हुए भी कि हम एक बहुत बड़ी लड़ाई लड़ चुके हैं पर केन्द्रीय सरकार अथवा गवर्नर-जनरल के लिये यह आवश्यक नहीं समझा गया कि वे हस्तक्षेप करें। यदि

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

धारा 93 के बल पर हम जीते रहे हैं और ऐसे संकटकाल में से गुजर चुके हैं जो पिछले बीस वर्ष तक रहा तो मैं नहीं समझता हूं कि किसी ऐसे आपात के पैदा होने की संभावना है जिसके लिये संसद का हस्तक्षेप आवश्यक हो। अत: मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस पूरे के पूरे विषय पर फिर से विचार हो और आपात में कार्यवाही करने की समस्त शक्तियां सर्वप्रथम राज्यपाल पर छोड़ी जायें। यदि स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है और राष्ट्रपति अथवा संसद् के लिए हस्तक्षेप करने के अलावा और कोई चारा नहीं रहता है तो केन्द्र हस्तक्षेप करे। इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता था।

मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 278 के समर्थन में अमरीका और आस्ट्रेलिया के संविधानों को उद्धृत किया है। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से आस्ट्रेलिया या अमरीका के दोनों में से किसी के संविधान में आपात का कोई भी उल्लेख नहीं है। कदाचित उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए उनको उद्धृत किया होगा कि जहां तक एककों का सम्बन्ध है किसी प्रकार का भी शक्ति अपहरण केन्द्र द्वारा नहीं किया जायेगा। संविधान की प्रत्येक धारा का इस प्रकार निर्माण किया गया है कि उससे एककों की स्वायत्तता का सम्मान हो। यदि हम ऐसे संविधान को क्रियान्वित करना चाहते हैं तो केन्द्र को प्रान्तों की स्वायत्तता का सम्मान करना पड़ेगा चाहे हम यह विशिष्ट रूप से कहें या न कहें। यदि हम केन्द्र में ही संविधान के उपबन्धों का सम्मान नहीं करेंगे तो फिर उसके सम्मान की किसी और से किस प्रकार आशा रखेंगे? अत: विदेशी संविधानों से समर्थन प्राप्त करने के प्रयत्न में माननीय डाक्टर के कथन में कोई सार न था। यदि इस समय प्रथम बार प्रकट की गई इस पूरी योजना के समान किसी समुचित योजना को वे उद्धृत करते तब तो कुछ संतोषजनक बात होती। पर वे ऐसा न कर सके यहां तो हम प्रान्तीय राज्यपालों और प्रान्तीय शासन विभागों से समस्त शक्तियां छीन रहे हैं। श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि यह बुद्धिमता पूर्ण है अथवा इसके भली प्रकार क्रियान्वित होने की ही संभावना है अथवा यह दृढ़ तथा लाभदायक शासन के हित में है।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य मत्स्य): अध्यक्ष महोदय, इस महान् सभा के अमूल्य समय के कुछ अंश को बरबाद करने का कारण यह उत्तेजना है जो मेरे माननीय मित्र श्री कामत के मुख से निकली हुई कुछ बातों के कारण पैदा हुई है। उन्होंने अपनी वाग्धारा को अपनी ही कुछ प्रिय पदावलियों से चिकना चुपड़ा बना लिया है-और मेरे विचार से यही कुल पूंजी है जिसको लेकर वे चलते हैं। अनुच्छेद 277—क पर जो उन्होंने संशोधन प्रस्थापित किये हैं उनके विश्लेषण से मैं भाषण आम्भ करूंगा। सर्वप्रथम वे चाहते हैं कि हम "राज्यपाल" शब्द के पश्चात् "संघ" शब्द जोड़ दें। यह एक सत्य है और अनुच्छेद 277-क को सरसरी तौर से पढ़ने पर भी यह विदित होगा कि उसमें केवल एक सिद्धान्त दिया हुआ है और अनुच्छेद 278 उस सिद्धान्त को प्रवर्तन में लाने के लिए एक तंत्र की व्यवस्था करता है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना केवल सरकार का ही नहीं वरन् समस्त संघ का समस्त राष्ट्र का प्रकार्य है। अत: "सरकार" शब्द निरर्थक होगा।

दूसरी बात वे ये कहते हैं कि प्रस्थापित अनुच्छेद 277-क की द्वितीय पंक्ति में "और" शब्द के स्थान में "अथवा" शब्द रखा जाये। मैं उनको यह विश्वास दिला सकता हूं कि यह कोई प्रश्न-पत्र नहीं है जिसमें परिक्षार्थियों को एक प्रश्न अथवा उसके स्थान में किसी अन्य प्रश्न का उत्तर देने का विकल्प दिया जाये। वास्तव में दोनों आपातों में चाहे वह बाह्य आक्रमण हो या आभ्यन्तरिक अशान्ति संघ और राष्ट्र का यह कर्तव्य तथा प्रकार्य है कि वह प्रत्येक राज्य की रक्षा करे।

अंत में वे चाहते हैं कि हम "अशान्ति" शब्द के स्थान में "उपद्रव और अराजकता" शब्द रखें। मैं नहीं समझता हूं कि "अशान्ति" और "उपद्रव और अराजकता" में विधेयक–सूक्ष्म विवेचना सरलता से हो सकती है। "उपद्रव और अराजकता" केवल अशान्ति का ही परिणाम है। वास्तव में जहां कहीं भी संकट हो वहीं हमें शीघ्रता से उचित कार्यवाही करनी चाहिये....।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मेरे मित्र केवल खांसी जुकाम के लिए चीरा लगाना विनिहित करेंगे।

***श्री राजबहादुरः** मैं खुश होता यदि श्री कामत कोई सक्रिय सुझाव देते। मैं समझता हूं कि सभा में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आपात की दशा में प्रयुक्त होने के लिए कुछ रक्षा कवचों को इस संविधान में रखने की बुद्धिमता को अस्वीकार करे। केवल अशान्ति अथवा अराजकता के कारण ही नहीं बल्कि अन्य कारणवश भी हम व्यवस्था भंग होने की संभावना का सरलता से अनुमान कर सकते हैं। थोड़ी देर के लिए फ्रांस की दशा पर विचार करिये जहां कि लगभग हर दूसरे दिन सरकार बदलती है। ऐसी परिस्थिति में यह लाभदायक होगा कि राष्ट्रपति से यह कहा जाये कि जब तक निर्वाचन न हों वे अपने हाथ में शक्तियां ले लें। इसी प्रकार हम किसी प्रान्त या राज्य में वित्तीय व्यवस्था के भंग होने का भी अनुमान कर सकते हैं। न्यू फाउन्डलेंड के उपनिवेश का उदाहरण हमारे सामने है। वित्तीय व्यवस्था भंग हो जाने के कारण न्यू फाउन्डलेंड ने शासन चलाना कठिन समझा और इसका फल यह हुआ कि उसे इंग्लैंड की संसद् से यह निवेदन करना पड़ा कि वह उसकी आर्थिक सहायता करे और उसे अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बना दे। संसद् ने हस्तक्षेप किया और अंतिम परिणाम यह हुआ कि अपनी मर्जी से न्यू फाउन्डलेंड अब कनाडा का एक प्रान्त हो गया है, हमारे देश में भी ऐसे आपात पैदा हो सकते हैं। और फिर मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है जिसके कारण से हम अपने राष्ट्रपति का अविश्वास करें जो अभी तक बना ही नहीं है। आखिर राष्ट्रपति होगा कौन? राष्ट्रपति हमारा ही देशवासी होगा। उसका हम निर्वाचन करेंगे—वह हमारी लोकतंत्रात्मक आत्मा का रक्षक होगा। वह हमारी स्वतंत्रता और आजादी का संरक्षक होगा। वह देश का प्रथम नागरिक होगा। मैं नहीं समझ पाता हूं कि श्री कामत उसके प्रति इतनी शंका क्यों करते हैं। अब वह समय आ गया है कि हमें अपनी शंकाओं और अन्धविश्वासों का परित्याग कर देना चाहिये। यह तो स्पष्ट ही है कि हम 1947 के पूर्व कालीन युग में नहीं रह रहे हैं। हम क्रांतिकारी भावनाओं और क्रांतिकारी विचारों की बात करते हैं। पर प्रतीत ऐसा होता है कि अभी तक जो परिवर्तन देश में हुआ है हम उसके

[श्री राजबहादुर]

अनुकूल नहीं बन पाये हैं। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हम अब अपने घर के स्वामी हैं? राष्ट्रपति का निर्वाचन हमारे द्वारा होगा और हमें उस पर अविश्वास नहीं करना चाहिये। आपात की दशा में केवल दो महीने के लिए क्या हम उस पर विश्वास नहीं कर सकते हैं? अपने विचार की पुष्टि में कोई तर्क प्रस्तुत किये बिना मेरे मित्र यहां तक कह गये कि यह अनुच्छेद "लोकतंत्रात्मक स्वतंत्रता को रद्द करने के लिए केवल एक बहाना है"। मैं कहता हूं कि यह ठीक इसके विपरीत है और जो कुछ उन्होंने कहा है उसका विरोधी सिद्धान्त है। यह स्वतंत्रता और आजादी की रक्षा करने के लिए है कि कुछ आपात का सामना करने के लिए ऐसा उपबन्ध किया गया है। उन्होंने प्रस्थापित अनुच्छेद में "अन्यथा" शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की है। प्रस्थापित अनुच्छेद इस प्रकार है:

> 'यदि किसी राज्य के राज्यपाल या शासक से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये.....तो राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा.....।"

मैं श्री कामत से यह जानना चाहूंगा कि क्या वे केवल उस दशा तक ही इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियों को निर्बन्धित करना चाहते हैं जिसमें उसे राज्यपाल से प्रतिवेदन मिले और किसी अन्य आकस्मिकता के लिए नहीं। और आकस्मिकतायें भी पैदा हो सकती हैं। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत उन दशाओं में भी राष्ट्रपति को कार्यवाही करने की शक्ति होनी चाहिये जिनकी सूचना उसे अन्य साधनों से मिलती है। उसे अवश्य ही अपने मंत्रिमंडल अथवा सरकार से मंत्रणा मिलने पर कार्यवाही करने देना चाहिये। मैं नहीं समझता हूं कि "अथवा अन्यथा" शब्दों के निकालने का प्रयास करते हुये वे इस उपबन्ध में कोई ठीक संशोधन करेंगे।

अपने भाषण में श्री कामत ने ईश्वर से यह दया करने की प्रार्थना की कि वह सभा को यह जानने की सद्बुद्धि दे कि इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति को शक्ति देना, उनके ही शब्दों में, "मूर्खता, अज्ञानता तथा अपराध है"। मैं अपनी ओर से यह प्रार्थना करूंगा कि हे ईश्वर हमें सद्बुद्धि दे कि हम इन सब बातों को ठीक-ठीक जान जायें। वह हमें इतना सामान्य ज्ञान और सद्बुद्धि दे कि हम केवल आलोचना के लिए आलोचना न करें। हमें यह देखना चाहिये कि इस संविधान में हम कुछ ऐसे उपबन्ध बनायें जो हमारे देश में अप्रत्याशित अथवा भद्दी परिस्थितियों के पैदा होने पर हमारी अच्छी सहायता कर सकें। मेरे माननीय मित्र शायद यह विचार रखते हैं कि हम कोरी बातों और थोथी निन्दाओं में पड़कर अपने देश का शासन चला सकते हैं और अपनी स्वतंत्रता और आजादी की रक्षा कर सकते हैं। सभा इस बात को जानती है कि कोई भी ऐसा नहीं कर सकता, अत: मैं माननीय सदस्यों से इस बात पर ध्यान रखने के लिए निवेदन करूंगा कि मेरे मित्र द्वारा पेश किये गये संशोधन अस्वीकार किये जायें। श्रीमान्, मैं भाषण समाप्त करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): दोनों अनुच्छेदों पर डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के समर्थन में मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

सर्वप्रथम मैं इस कारण की व्यवस्था करूंगा कि यह अनुच्छेद क्यों रखा गया है जिसमें "संविधान का पालन करना" संघ का कर्त्तव्य बना दिया गया है। राष्ट्र और संघ सरकार के संबंध में सबसे पहली बात "संविधान का पालन करना है"। यदि इस पद का अर्थ पूर्ण रूप से समझ लिया गया है तो यह अनुभव किया जायेगा कि प्रांतीय संविधान में हस्तक्षेप करने का कोई उद्देश्य नहीं हो सकता क्योंकि प्रांतीय संविधान संघ संविधान का एक भाग है। अत: संघ सरकार का यह कर्त्तव्य है कि बाह्य आक्रमण आभ्यन्तरिक अशांति और आन्तरिक अव्यवस्था से रक्षण करे और यह देखें कि दोनों राज्यों और संघ में संविधान समुचित रूप में क्रियान्वित हो रहा है। यदि प्रांतों अथवा राज्यों में संविधान ठीक रूप से क्रियान्वित हो रहा है अर्थात् यदि संविधान द्वारा प्रतिपादित रूप में उत्तरदायित्व पूर्ण सरकार ठीक-ठाक प्रकार्य करती है तो संघ न हस्तक्षेप कर सकता है और न करेगा। प्रांत अथवा राज्य की स्वायत्तता के प्रवर्त्तक यह अनुभव करेंगे कि प्रांत अथवा राज्य की कल्याणकारी स्वायत्तता की उन्नति में एक रुकावट होने की अपेक्षा यह उपबन्ध प्रांत अथवा राज्य की स्वायत्तता का रक्षक है क्योंकि यह देखने का मुख्य आभार कि संविधान का पालन हो रहा है संघ पर डाला गया है। यह उपबन्ध किसी प्रकार से भी एक अनूठा उपबन्ध नहीं है। संयुक्त राज्य के अनुकरणीय फेडरल संविधान में, जहां कि राज्य की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता अन्य किसी फेडरल शासन व्यवस्था की अपेक्षा अधिक मानी जाती है, आपको इस उद्देश्य का उपबन्ध मिलेगा कि संघ अथवा केन्द्रीय सरकार का कर्त्तव्य होगा कि वह यह देखे कि राज्य की रक्षा आन्तरिक क्रांति और बाह्य आक्रमण दोनों से की जाती है। इस अनुच्छेद के रखने में हम अमरीका के श्रेष्ठ अथवा अनुकरणीय फेडरल शासन व्यवस्था के उदाहरण का पालन कर रहे हैं। और भी, आस्ट्रेलिया के संयुक्त मंडल के संविधान की धारा 60 में भी एक इसी प्रकार का उपबन्ध है कि कार्यपालिका सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे। ये बातें प्रथम अनुच्छेद के निर्देश में है जिसको मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है।

इसके बाद मैं आनुषंगिक उपबन्ध पर आता हूं जो संघ सरकार पर यह प्रमुख कर्त्तव्य डाला गया है कि वह यह देखे कि भारत के विभिन्न भागों में संविधान क्रियान्वित हो और उसका ठीक-ठीक पालन हो। यदि संविधान के ठीक-ठीक क्रियान्वित करने में किसी एकक में कोई कठिनाई होती है तो संघ सरकार का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वह हस्तक्षेप करे और व्यवस्था ठीक करे। केवल संवैधानिक तंत्र के विफल होने अथवा भंग होने पर ही संघ सरकार हस्तक्षेप करेगी।

इस उपबन्ध की खास बातें ये हैं कि उद्घोषणा के होते ही कार्यपालक प्रकार्य राष्ट्रपति द्वारा ले लिये जाते हैं। इसका वास्तविक अर्थ क्या है? इस बात की सदस्यों को बार-बार याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि "राष्ट्रपति" का अर्थ केन्द्रीय मंत्रि-मंडल हैं जो समस्त संसद् के प्रति उत्तरदायी है जिसमें उन विभिन्न एककों के प्रतिनिधि होते है जो फेडरल सरकार के अंगभूत भाग हैं। इसलिये प्रांतीय यंत्र के विफल होने पर प्रांतीय मंत्रि-मंडल की अपेक्षा केन्द्रीय मंत्रि-मंडल उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। यह पहली बात है।

इसके बाद जहां तक कार्यपालिका सरकार का संबंध है प्रांत में ठीक प्रकार से शासन चलाने के लिए वह संघ संसद् के प्रति उत्तरदायी होगी। इस अनुच्छेद के प्रथम भाग का यह प्रभाव होगा।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

इसके बाद यह प्रश्न है कि विधान किस प्रकार संचालित किया जायेगा। विधायी विषय संबंधी मुख्य प्राधिकार संसद् को सौंपा जाता है। पर इसके साथ-साथ विभिन्न कार्यों का ध्यान रखते हुए जिनमें संसद् व्यस्त है और भारतीय परिस्थितियों की आकस्मिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए विधान के दैनिक कार्य का करना संसद् के लिये असंभव हो जायेगा यद्यपि अंतिम उत्तरदायित्व संसद् पर ही रहेगा। अत: अपनी एक अथवा समस्त शक्तियों को देकर यह उपबन्ध संसद् को विधान के प्रमुख कर्तव्य के निर्वहन करने में समर्थ करता है।

शक्ति देने का यह अधिकार संसद् में सौंपी हुई सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता की संपूर्ण शक्ति का प्रासंगिक है। पर फेडरल न्यायालय के एक हाल के विनिश्चय में जो कुछ शंका पैदा की गई है उसको विचार में रखते हुये यह स्पष्ट करना आवश्यक समझा गया कि परिस्थिति की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए संसद् अपने प्रकार्य को अन्य निकाय या निकायों को दे सकती है। उद्घोषणा के होते ही राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसे सभा के समक्ष प्रस्तुत करे। यह केवल एक अस्थायी काल के लिये होगा। इसके बाद संसद् देश के उस विशिष्ट भाग की परिस्थिति पर विचार कर सकेगी। संसद् उस मंत्रि-मंडल पर अपना नियंत्रण तथा निरीक्षण कर सकती है जिसने उस राज्य के कार्यपालिका प्रकार्यों का उत्तरदायित्व ले लिया है। संसद् में सब एककों के प्रतिनिधि हैं। पुरानी धारा 93 और इस अनुच्छेद में सिवा कुछ भागों में भाषा के और कोई भी समानता नहीं है। धारा 93 के क्रियान्वित करने का अन्तिम उत्तरदायित्व धारा 93 के अधीन ग्रेट ब्रिटेन की संसद् पर था जिसमें निस्संदेह भारतीय जनता के प्रतिनिधि नहीं थे, और वर्तमान अनुच्छेद के अधीन उत्तरदायित्व भारतीय संसद् पर है जिसका निर्वाचन समान मताधिकार के आधार पर होता है और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस समय के प्रतिनिधियों के अन्त:करण में ही नहीं वरन् अन्य एककों के प्रतिनिधियों के अन्त:करण में भी जागृति पैदा हो जायगी और वे इस बात पर ध्यान देंगे कि उपबन्ध का ठीक-ठीक प्रयोग हो रहा है। इन परिस्थितियों के अधीन सिवा इस भावनामूलक आपत्ति के कि यह पुरानी धारा 93 की पुनरावृत्ति है इस अनुच्छेद में निहित मुख्य सिद्धांत पर आपत्ति करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह काल बड़ा गंभीर और कठिन है। एक पृथक-पृथक माप के हैं और कुछ एककों में बहुत काल से उत्तरदायित्व पूर्ण शासन प्रयोग में नहीं लाया गया है। कुछ राज्यों में तो मताधिकार तक एक नई वस्तु है और हमने राज्यों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का पुर:स्थापन कर दिया है यद्यपि वे सब उन उन्नत एककों के समान नहीं हैं जिनको प्राचीन ब्रिटिश भारत के प्रांत कहा जा सकता है। इन परिस्थितियों के अधीन इस संविधान के पुष्ट तथा कल्याणकर क्रियाकरण के हित में यह आवश्यक है कि केन्द्र की ओर से कुछ नियंत्रण हो जिससे कि लोग अपने उत्तरदायित्व को समझ और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन को ठीक-ठीक चलायें। इन परिस्थितियों में ऐसी कोई बात नहीं है। जिसके कारण इस वर्तमान अनुच्छेद में निहित सिद्धांत पर कोई आपत्ति की जाये। यह भली प्रकार से सोच विचार कर रखा गया है और मेरे मित्र ने इस विषय के सभी पहलुओं पर विचार कर लिया है। उसमें कार्यपालिका और विधायी प्रकार्यों तक में अन्तर कर दिया है। विधायी पक्ष में सम्पूर्ण शक्ति संसद को दे दी गई है। साथ ही साथ उसमें प्रशासन

संबंधी सुविधा भी है। ऐसी कोई बात नहीं है जो मंत्रिमंडल पर नियंत्रण रखने में संसद् को रोके, जबकि मंत्रिमंडल किसी विशिष्ट एकक अथवा राज्य की शासन व्यवस्था के लेने में दुर्व्यवहार करे। मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन का समर्थन करने में मुझे बड़ी खुशी है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल) : श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 188 के अपमार्जन का समर्थन करता हूं। अनुच्छेद 278 के संबंध में मैं श्री कामत के संशोधन संख्या 225 का समर्थन करता हूं। मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का भी समर्थन करता, यदि वह आवश्यक होता तो। पर मेरी राय से प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राष्ट्रपति का यही विचार होगा, तो सामान्य निर्वाचन के लिए आदेश देने में कोई रुकावट नहीं है और ऐसी दशा में राष्ट्रपति स्वयं उद्घोषणा को रद्द कर देगा। मैं यह अवश्य आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद के अधीन कड़ी कार्यवाही करने के पूर्व स्थिति सुधारने का अवसर निर्वाचक-मंडल को दिया जायेगा और इस कारण मेरी राय में प्रो. सक्सेना का संशोधन आवश्यक नहीं है।

जहां तक श्री कामत के संशोधन का संबंध है यद्यपि मैं उससे सहानुभूति रखता हूं, पर बाद में मैं यह बताऊंगा कि वर्तमान परिस्थितियों में उस पर क्योंकर जोर नहीं दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 188 को अपमार्जित करने हेतु मेरा समर्थन शायद यह उन लोगों को कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हो, जिनको यह याद है कि मैं इस संशोधन का, जो अनुच्छेद 188 का निर्माण करता है, लेखक था। पर मुझे विश्वास है कि उन लोगों को आश्चर्य नहीं होगा, जिन्हें मेरा वह भाषण याद है, जो मैंने इस संशोधन को पेश करते समय दिया था। उस समय मेरा तर्क यह था कि राज्य में ऐसा आपात है जो राज्य की शांति और प्रशांति को संकास्पद बना देता है। और ऐसे समय वही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसका निर्वाचन यथा संभव व्यापक मताधिकार द्वारा हुआ है और इसलिये उसे जनता का पूर्ण विश्वास प्राप्त है। इस कारण मैंने कहा था कि ऐसे व्यक्ति को आपात शक्तियां क्यों नहीं दी जाती हैं, जब तक कि केन्द्र उस परिस्थिति पर काबू करे। मेरा यह तर्क था और उस समय सभा ने उसे स्वीकार कर लिया था। पर अब निर्वाचित राज्यपाल के स्थान में मनोनीत राज्यपाल कर दिया गया है, अतः मेरा तर्क आधारशून्य हो गया। इसलिये अनुच्छेद 188 के अपमार्जन का समर्थन करने में मुझे कोई संकोच नहीं है।

यद्यपि मैं अनुच्छेद 188 के अपमार्जन का समर्थन करता हूं, पर मैं नये अनुच्छेद 278 से बहुत खुश नहीं हूं। मैं इसलिये खुश नहीं हूं कि नये अनुच्छेद का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक है। अनुच्छेद 188 केवल तभी प्रवर्तन में आ सकता था, जबकि राज्य की शांति और प्रशांति शंकास्पद हो जाती थी, पर इस अनुच्छेद 278 का प्रवर्तन तो विधि तथा आदेश संबंधी आपात के न होने पर भी वरन् केवल संविधानिक तंत्र के विफल होने पर ही हो जाता है। कठोर शक्ति देने की बात तब तो मैं समझ सकता हूं, जबकि राज्य की स्थिति ही शंकास्पद हो जाये। पर केवल संविधानिक विफलता अथवा संविधानिक दोष के लिए असामान्य शक्तियां

[श्री बी.एम. गुप्ते]

देना मैं पसन्द नहीं करता हूं। यह बहुत कम गंभीर तथा अनावश्यक सा विषय है और ऐसे विषय के लिए मैं नहीं चाहता हूं कि असामान्य शक्ति दी जायें। हां, आलोचक यह कहेंगे और यह कहा गया है कि हम उसी घृणित धारा 93 की केवल पुनरावृत्ति कर रहे हैं, पर मैं इस आलोचना से सहमत नहीं हूं, क्योंकि इन दोनों में बहुत अधिक अन्तर है। कल एक माननीय सदस्य ने यह कहा था कि अनुच्छेद 275 धारा 93 की पुनरावृत्ति है। मुझे इन दोनों में कोई संबंध नहीं दिखाई देता है, क्योंकि अनुच्छेद 275 और 188 शांति और प्रशांति की ओर निर्देश करता है। धारा 93 में संविधानिक विफलता की ओर निर्देश है। अनुच्छेद 278 पुरानी धारा 93 के सन्निकट है; यद्यपि फिर भी अन्तर बहुत अधिक है। एक स्पष्ट अन्तर तो यह है कि उत्तरदायित्व विहीन राज्यपाल और मुख्य राज्यपाल (गवर्नर जनरल) के स्थान में उत्तरदायित्व पूर्ण निर्वाचित सरकार हो गई है, पर मेरी राय में अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकप्रिय विधान मंडल का परिस्थिति पर प्रभावी नियंत्रण होगा। दो महीने में संसद् से परामर्श होगा और इसके बाद संसद् ही उस परिस्थिति का प्रबन्ध करेगी। धारा 93 और वर्तमान अनुच्छेद 278 में यह बड़ा भारी अन्तर है। इस अन्तर के होते हुए भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि हो सके तो हमें अपने संविधान को ऐसे उपबन्ध से कुरूप नहीं बनाना चाहिये। यह हमारी इच्छा थी, पर अपनी इच्छा के अनुसार हम चल तो नहीं सकते। दुर्भाग्यवश देश में परिस्थितियां ही ऐसी हैं: हम एक ऐसे काल में रह रहे हैं जो शायद हमारे लोकतंत्र रूपी शिशु के लिए संकटजनक सिद्ध हो। फ्रांस में कभी-कभी दो दिन में तीन सरकार विफल हो जाती हैं। एक परिपक्व तथा पुराने लोकतंत्र में इस वैभव को प्राप्त किया जा सकता है; पर हमारा लोकतंत्र तो अभी शिशु अवस्था में है। और यद्यपि हम इसे नहीं चाहते हैं, पर हमें कुछ ऐसी बातें सहन करनी पड़ेगी जिनको सामान्य काल में हम अस्वीकार कर सकते थे। यद्यपि मैंने इस अनुच्छेद का समर्थन किया है, फिर भी मैं केवल यही आशा करता हूं कि यह निष्प्राण रहे और इन असामान्य शक्तियों के प्रयोग करने का कोई अवसर न आये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल) : अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 278 और 278-क कुछ रूपों में इस संविधान के बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं। इसमें कोई शक नहीं कि प्रथम दृष्टि डालने पर तो वे कदाचित भद्दे और बुरे से दिखाई देते हैं, क्योंकि वे पुरानी घृणित धारा 93 की पुनर्प्रविष्टि से प्रतीत होते हैं। मेरे माननीय मित्र सर्वश्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और गुप्ते ने समझा दिया है कि इनका रूप चाहे जैसा हो, पर इनका सार धारा 93(क) से बिल्कुल भिन्न है। श्रीमान्, मैं उनके तर्कों को दुहराऊंगा नहीं, पर मैं यह बताना चाहूंगा कि धारा 93 में तीन मुख्य बातें थीं। पहली राज्यपाल द्वारा स्वविवेकानुसार शक्तियों का प्रयोग होगा। दूसरी जब राज्यपाल अपने स्वविवेकानुसार कार्यवाही करता है, तो वह उस प्रांत के किसी प्राधिकारी, किसी पक्ष अथवा किसी प्रतिनिधि के प्रति उत्तरदायी नहीं है। तीसरी वह भारत के किसी भी प्राधिकारी के प्रति उत्तरदायी अथवा उसको हिसाब देने वाला नहीं है। अत: यदि धारा 93 से हम इसे मिलाते हैं, तो इन तीन कसौटियों पर हमें इसे कसना चाहिये। क्या कोई ऐसा प्राधिकारी

है, जिसे अपने स्वविवेक से प्रांतीय संविधान को रद्द करने का अधिकार हो? अनुच्छेद 188 के पुराने मसौद में दो सप्ताह के लिए राज्यपाल को अपने स्वविवेकानुसार उसे रद्द करने की शक्ति दी गई थी। मैं समझता हूं कि वह बहुत ही गलत उपबन्ध था और यह बड़े सौभाग्य की बात है कि पुराने अनुच्छेद 188 का अपमार्जन किया जा रहा है। अन्यथा कोई भ्रांत राज्यपाल, जिसे परिणामों की चिंता नहीं है, प्रांत की जनता और भारत की संसद् के रक्षार्थ प्रस्तुत होने के पूर्व ही संविधान को उलट देगा। देश में दुष्टों की कमी नहीं है और यह कोई अनहोनी बात नहीं है, ऐसा कोई दुष्ट व्यक्ति राज्यपाल की गद्दी पर जा पहुंचे और गड़बड़ी कर दे। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने यह बता दिया है कि "राष्ट्रपति" शब्द का संविधानिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति अपने स्वविवेकानुसार कार्यवाही नहीं कर सकता है। वह केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलेगा। अतः न अनुच्छेद 278 में और न अनुच्छेद 278-क में लोकतंत्र को किसी रूप में भी दलित किया गया है। शक्ति का प्रयोग स्थानीय विधान-मंडल द्वारा हो या संसद द्वारा, यह सुविधा का विषय है और इसमें लोकतंत्र का वास्तविक तत्व अथवा सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त नहीं है। साधारणतया कुछ शक्तियों तथा प्रकार्यों का प्रयोग प्रांतीय विधान-मंडलों द्वारा किया जाता है, परन्तु जब प्रांतीय संविधान भंग हो जाता है तो ये शक्तियां और प्रकार्य केन्द्रीय कार्यपालिका और केन्द्रीय विधान मंडल पर आ जाते हैं, जो उतने ही लोकप्रिय तथा उतने ही लोकतंत्रात्मक हैं, जितने राज्य सरकारें और विधान-मंडल। यह भी नहीं भुला देना चाहिये कि केन्द्रीय संसद् में उस राज्य के प्रतिनिधि होंगे, जिसके शासनाधिकार ले लिये जाते हैं। यदि संसद् के दोनों सदन संकल्प द्वारा अनुमोदन नहीं करते हैं, तो दो महीने के पश्चात् प्रत्येक उद्घोषणा रद्द हो जायेगी। उत्तर सदन में स्थानीय विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचित सदस्य होंगे और प्रथम सदन में सम्बद्ध राज्यों के निर्वाचन-क्षेत्रों से वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे। अतः सम्बद्ध राज्य के प्रतिनिधियों से भी राज्य का शासन नहीं छीना जाता है। केवल यह होता है कि सम्बद्ध राज्य के प्रतिनिधि भारत के अन्य भागों के प्रतिनिधियों के सहयोग से राज्य पर शासन करेंगे। केवल यही परिसीमा है और यह परिसीमा आवश्यक है, क्योंकि उस राज्य में संविधान भंग हो चुका है। अतः यह लोकतंत्र के सिद्धांतों की अवज्ञा के रूप में नहीं है, जिसकी इस अनुच्छेद पर आपत्ति की जा सकती है। कदाचित इस अनुच्छेद के क्षेत्र के आधार पर उन सिद्धांतों की ठीक जांच करनी होगी क्योंकि अनुच्छेद 278 और 278-क तभी प्रवृत्त होते हैं, जब कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।

अब हम उन परिस्थितियों का व्यापक रूप से विश्लेषण करें जिनके अन्तर्गत ये अनुच्छेद प्रवृत्त हो सकते हैं। राज्य में शासन प्राकृतिक रूप में भंग हो सकता है, उदाहरणार्थ, जबकि सर्वत्र अभ्यांतरिक अशांति अथवा बाह्य आक्रमण हो अथवा किसी अन्य कारण से विधि तथा व्यवस्था का पोषण न हो सके। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि कोई प्रांतीय प्राधिकारी प्रकार्य नहीं कर सकता है और जो प्राधिकारी प्रकार्य कर सकता है, वह है केन्द्रीय सरकार और ऐसी आकस्मिकता में ये अनुच्छेद केवल अविरोधनीय ही नहीं वरन् परम आवश्यक हैं और इनके न होने से बड़ी अव्यवस्था हो जायेगी। राजनैतिक अव्यवस्था भी हो सकती है। यह एक ऐसा प्रश्न

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है जिसका सावधानीपूर्ण विश्लेषण अपेक्षित है। राजनैतिक अव्यवस्था तभी हो सकती है, जबकि मंत्रिमंडल न बनाया जा सके या जो मंत्रिमंडल बनाये जायें वे इतने अस्थायी हों कि वास्तव में शासन चल ही न सके। संविधान के अनुसार सामान्यता जब मंत्रिमंडल में बहुत अस्थायित्व हो तो ठीक प्रक्रिया यह है कि प्रथम सदन भंग कर दिया जाये और उसका फिर से निर्माण हो। यदि भंग करने के पश्चात् भी वही झगड़े स्थानीय विधान-मंडल में फिर से होने लगें और उन मंत्रिमंडल का चलना असंभव हो जाये, तो उस समय अनुच्छेद 278 और 278-क के अनुसार केन्द्र का हस्तक्षेप अनिवार्य होगा। इसके लिये समुचित अभिसमयों का विकास आवश्यक है। उदाहरणार्थ, इस अभिसमय का विकसित होना आवश्यक है कि राजनैतिक अव्यवस्था के कारण इन अनुच्छेदों की शरण लेने के पूर्व राज्य विधान-मंडल के प्रथम सदन का विघटन हो जाना चाहिये। विघटन के अभाव में केन्द्र को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये और यह एक ऐसा अभिसमय है, जिसे हमें विकसित करना होगा; पर अनुच्छेद में इसका रखना बुद्धिमानी नहीं है, क्योंकि ऐसी असामान्य परिस्थितियां हो सकती हैं, जबकि स्थानीय निर्वाचन भी केन्द्र द्वारा करना पड़े और अस्थायी रूप से केन्द्र को यह प्रभार ग्रहण करना पड़े।

इसके पश्चात् तीसरी आकस्मिकता आर्थिक अव्यवस्था की है। मान लीजिये कि किसी राज्य में मंत्रिमण्डल ठीक है, पर समस्त करों को कम करके या हटाकर वह लोकप्रिय होना चाहती है और दिवाले पर अपना प्रशासन चलाना चाहती है। मान लीजिये सरकारी सेवकों को वेतन नहीं दिया जाता है और आभारों की पूर्ति नहीं की जाती है और राज्य अपने घाटे को बढ़ाता जाता है। यह वास्तव में एक कठिन स्थिति है। केन्द्र को बहुत सावधान तथा सतर्क रहना पड़ेगा, उसको जितनी अधिक हो सकती है उतनी ढील करनी होगी, पर कभी न कभी तो आर्थिक अव्यवस्था की दशा में भी केन्द्र को हस्तक्षेप करना होगा, क्योंकि अन्ततोगत्वा समस्त देश की वित्तीय जिम्मेदारी का उत्तरदायित्व उसी पर है और यदि संयुक्त प्रांत जैसा एक बड़ा प्रांत दिवालिया हो जाता है, तो इसका यह अर्थ होगा कि समस्त देश दिवालिया हो गया। अतः अनुच्छेद 278 और 278-क के अधीन इस आकस्मिकता को भी संव्यवहार करना होगा ओर इस विषय में भी हमें अभिसमय विकसित करना होगा कि घाटे की वह कितनी धनराशि हो, जो इन अनुच्छेद 278 और 278-क को काम में लाये बिना प्रत्येक राज्य को उतनी राशि तक का घाटा करने दिया जाये। अतः अनुच्छेद 278 और 278-क पर आपत्ति वास्तव में ठीक-ठीक अभिसमयों के विकसित न होने की संभावना से संबंध रखती है। ये धारायें स्वयं तो अविरोधनीय हैं तथा आवश्यक हैं। परन्तु हां यदि केन्द्र इस विधि के शब्दार्थ का कठोर पालन करता है, तब तो किसी बात को भी संविधान का उल्लंघन समझा जा सकता है ओर यह हो सकता है, कि केन्द्र का हस्तक्षेप बहुधा हो तथा आपत्तिजनक हो। आखिर जब हम संसद् का निर्माण उस आधार पर कर रहे हैं, जिन पर कि उसका निर्माण हो रहा है, तो हम वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित लोक-सदन और विधान-मंडलों द्वारा भेजे हुये सदस्यों के द्वितीय सदन पर यह विश्वास कर सकते हैं कि वे यह देखें कि राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप नहीं हो रहा है। हां, कठिन स्थिति तो तब होगी, जबकि कुछ राज्यों में उन राजनैतिक पक्षों द्वारा शासन चलाया जाता है, जो उस राजनैतिक पक्ष से भिन्न हैं, जो केन्द्र और अन्य अधिकांश राज्यों पर शासन कर रहा है। उस समय यह संभव हो सकता

है कि राजनैतिक विरोध के कारण अनुच्छेद 278 और 278-क के अधीन कोई अनावश्यक अथवा असह्य कार्यवाही की जाये। इसका उपचार केवल कल्याणकारी अभिसमयों के विकास में है। यदि देश में शांति है और लोकतंत्र को उन्नत होने दिया जाता है, तो इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि इन अभिसमयों का विकास होगा और इन सब अनुच्छेदों का उन उचित प्रयोजनों के लिए उपयोग होगा, जिनके लिये ये बनाये गये हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे वास्तव में बड़ी खुशी है कि संविधान के निर्माताओं ने इस विचार को स्वीकार कर ही लिया कि अपने संविधान में अनुच्छेद 188 को न रखा जाये। प्रांतों में उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना और राज्यपाल की नई स्थिति से वह अनुच्छेद असंगत था। यह संतोषजनक है कि आखिरकार यह बात मान ली गई और राज्यपाल को वह शक्ति नहीं दी जा रही है, जो अनुच्छेद 188 द्वारा उसे दी जा रही थी। अब अनुच्छेद 188 और पुराने अनुच्छेद 278 के प्रयोजन की पूर्ति अनुच्छेद 278 के पुनरीक्षण द्वारा प्रस्थापित की गई है। आज हमें अपना ध्यान केवल अनुच्छेद 278 और 278-क पर ही नहीं रखना है, वरन् अनुच्छेद 277-क पर भी रखना है। यह अनुच्छेद निर्धारित करता है कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस बात का सुनिश्चय न करे कि प्रत्येक राजा का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाया जा रहा है। यह केन्द्रीय सरकार को बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशांति से राज्य के रक्षण का ही प्राधिकार नहीं देता है, वरन् वह इससे और भी आगे बढ़ जाता है और उस पर यह देखने का कर्त्तव्य भी डाल देता है कि प्रांत का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाया जा रहा है। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है? इसकी स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये क्योंकि प्रांतीय संविधान समुचित रूप से क्रियान्वित हो रहा है। यह सुनिश्चय न करने की शक्ति से उन शक्तियों का यथेष्ट परिवर्द्धन हो जाता है, जिनका केन्द्रीय सरकार बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशांति से राज्य का रक्षण करने हेतु उपभोग करेगी। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि इस संबंध में अनुच्छेद 275 और 276 पर विचार करना वांछनीय होगा, क्योंकि उनके उपबन्धों का इन अनुच्छेदों से घनिष्ट संबंध है, जो हमारे समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं। अनुच्छेद 275 में कहा गया है कि जब राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गंभीर आपात वर्तमान है, जिससे भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उस आशय की उद्घोषणा कर सकेगा। यह उद्घोषणा दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी, जब तक कि संसद के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा उस कालावधि की समाप्ति से पहले अनुमोदित न कर दी जाये। यदि इसको इस प्रकार अनुमोदित किया जाता है तब तो आपात की उद्घोषणा असीम काल तक के लिए प्रवर्तन में रह सकेगी, अर्थात् जितने समय के लिए कार्यपालिका उसे प्रवर्तन में रहना चाहे अथवा जब तक संसद् उसे प्रवर्तन में रहने दे। जब तक उद्घोषणा प्रवर्तन में रहती है, अनुच्छेद 276 के अधीन किसी प्रांत की सरकार को उस रीति के संबंध में निर्देश देने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को होगी, जिसके अनुसार उस प्रांत के कार्यपालिका प्राधिकार का प्रयोग किया जाये और केन्द्रीय संसद को किसी विषय संबंधी विधि बनाने की शक्ति होगी, चाहे वह विषय संघ-सूची में न हो। इस प्रकार उसे राज्य-सूची में दिये हुए विषयों पर विधि पारित करने की शक्ति होगी। और यह भी कि केन्द्रीय विधानमंडल किसी उस विषय के संबंध में, जिसके

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

लिए विधान पारित करने में वह सक्षम है, भारतीय सरकार के पदाधिकारियों तथा प्राधिकारियों को शक्ति दे और उन पर कर्त्तव्य आरोपित कर सके। इन दोनों अनुच्छेदों का प्रभाव यह है कि जब बाह्य अथवा आभ्यन्तरिक कारणों से भारत अथवा उसके किसी भाग को शांति और, प्रशांति संकट में है, तो वे केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार देते हैं। और यह भी यदि प्रांत में कुशासन द्वारा इतना असंतोष पैदा हो जाता है कि लोक-शांति संकट में पड़ जाती है, तो उस परिस्थिति में कार्यवाही करने की पर्याप्त शक्ति इन अनुच्छेदों के अधीन भारतीय सरकार को होगी। केन्द्रीय सरकार को यह देखने के लिए कि प्रांत का शासन ठीक रीति से चल रहा है और किस बात की जरूरत है? यह स्पष्ट है कि संविधान के निर्माता देश की शांति और प्रशांति की विधि और व्यवस्था बनाये रखने का विचार नहीं कर रहे हैं।, वरन् प्रांतों में अच्छे शासन का विचार कर रहे हैं। प्रांतों की बाह्य आक्रमण तथा आभ्यन्तरिक अशांति से रक्षा करने के लिए ही वे हस्तक्षेप नहीं करेंगे, वरन् अपनी सामर्थ्यानुसार अच्छे शासन का सुनिश्चयन करने के लिए भी दूसरे शब्दों में केन्द्रीय सरकार को निर्वाचकों की स्वयं उन्हीं से रक्षा करने के लिए हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी। यदि प्रांत में कुप्रबन्ध, कार्य-कौशल का अभाव अथवा भ्रष्टाचार है, तब तो मैं मानता हूं कि इन सब अनुच्छेद 277, 278 और 278-क के अधीन केन्द्रीय सरकार को उस प्रांत का शासन अपने हाथ में लेने की शक्ति होगी—मैं 'राष्ट्रपति' शब्द का प्रयोग नहीं करता हूं, क्योंकि उसे अपने मंत्रियों की मंत्रणा द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने यह सिद्ध करने के लिए कुछ उदाहरण दिये थे कि प्रांत में अव्यवस्था किस प्रकार हो सकती है जबकि कोई बाह्य आक्रमण युद्ध और आभ्यन्तरिक अशांति न हो। अपने प्रश्न की व्याख्या में उन्होंने एक बहुत ही भद्दा तथा बुरा दृष्टांत दिया था। उन्होंने हमसे यह मान लेने के लिए कहा कि प्रांत में ऐसे कई पक्ष वर्तमान हैं, जो उस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार उस प्रांत का शासन चलाने में रुकावट डालें—अर्थात् मैं समझता हूं कि निपुणता से शासन चलाने में रुकावट डालें। उन्होंने अपने विचार हमारे सामने रखे थे कि ऐसी दशा में प्रांतीय विधान-मंडल का विघटन हो, जिससे यह विदित हो जाये कि क्या निर्वाचक इस परिस्थिति में ठीक-ठीक उपचार करने के योग्य है या नहीं। यदि नये विधान-मंडल में पुराने पक्ष—मेरे विचार से उनका faction शब्द से आशय पक्ष का ही था—फिर आ जाते हैं, तो उनकी राय से केन्द्रीय सरकार उस प्रांत का प्रशासन अपने हाथ में ले ले यह न्यायसंगत है। श्रीमान्, यदि किसी प्रांत में पक्षों की बहुलता है, तो हम इसका स्वागत तो नहीं कर सकते हैं, परन्तु क्या स्वयं यही तथ्य इस बात के लिए पर्याप्त है कि केन्द्रीय सरकार प्रांतीय शासन में हस्तक्षेप करे? कुछ देशों में ऐसे अनेक पक्ष हैं जो मंत्रिमंडलों को अस्थायी बनाते रहते हैं। फिर भी उन देशों का शासन उनकी सुरक्षा और स्थिति में बिना किसी प्रकार के संकट के चलाया जाता है। यदि प्रांत में बहुत अधिक पक्ष वर्तमान है और वे सब मिलकर काम नहीं कर सकते अथवा अपने प्रांत के हित में महत्वपूर्ण विषयों पर एक करार नहीं कर पाते, तो यह दु:ख का विषय हो सकता है; परन्तु वह चाहे कितने ही दु:ख की बात क्यों न हो, पर मेरी राय में इसके कारण यह न्यायसंगत नहीं होगा कि केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप करे और संसद् से संयुक्त होकर सम्बद्ध राज्य के शासन का उत्तरदायित्व ग्रहण कर ले। जैसाकि मैं

कह चुका हूं, यदि प्रांत में इतना कुप्रबंध हो जाता है कि जिसके कारण भारत या उसके किसी भाग में गंभीर स्थिति पैदा हो जाती, तब तो अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा? क्या इससे आगे बढ़ना ठीक है? आजकल हम कई प्रांतों की सरकारों के खिलाफ बड़ी बड़ी शिकायतें सुनते हैं, पर अभी तक यह सुझाव नहीं किया गया है कि यह देश अथवा सम्बद्ध प्रांत के हित की बात होगी कि केन्द्रीय सरकार प्रांतीय सरकारों को अलग फैंक दे और सम्बद्ध प्रांतों का लगभग वैसा ही प्रशासन करें, जैसा कि केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों का होता है। श्रीमान्, यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय मे प्रांतीय सरकारों को हस्तक्षेप करने का अधिकार है, जबकि नगरपालिका या जिला-मंडल घोर तथा लगातार कुप्रशासन का अपराधी हो, पर नगरपालिका या जिला-मंडल किसी भी रूप में प्रांत की तुलना में बहुत ही न्यून है। प्रांत का परिमाण और उसमें निर्वाचकों की संख्या ही उसे अपने आधार पर खड़ा रखती है। यदि उत्तरदायित्वपूर्ण शासन को बनाये रखना है, तो निर्वाचकों में यह विचार उत्पन्न करना चाहिये कि जब कुशासन होता है, तो उचित उपचार को प्रयोग करने की शक्ति उनके हाथों में है। उनको यह जानना चाहिये कि ऐसे नये प्रतिनिधि चुनना, जो उनके सर्वोत्तम हितों के अनुसार कार्य करने में अधिक समर्थ हों, उनकी इच्छा पर निर्भर है। यदि केन्द्रीय सरकार और संसद् को वह शक्ति दी जाती है, जिसका देना इन सब 277, 278 और 278-क में प्रस्थापित किया गया है, तो एक घोर संकट यह है कि प्रांत में प्रांतीय सरकार से जब कभी असंतोष होगा, तो सहायता करने के लिए केन्द्र से निवेदन किये जायेंगे। प्रांतीय निर्वाचकगण अपने उत्तरदायित्व को केन्द्रीय सरकार के कंधे पर डाल सकेंगे। क्या यह ठीक है कि ऐसी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाये? उत्तरदायित्वपूर्ण शासन एक बहुत ही कठिन प्रकार का शासन है। इसके लिए धैर्य अपेक्षित है, और उसके लिये संकट का सामना करने के लिए साहस अपेक्षित है। यदि हम में न तो धैर्य है और न साहस, जिनकी आवश्यकता है, तो हमारा संविधान एक मृतप्रायः नवजात शिशु के समान ही होगा। अतः श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जिन अनुच्छेदों पर हम वाद-विवाद कर रहे है, उनकी आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 275 और 276 केन्द्रीय कार्यपालिका और संसद् को वे सब शक्तियां देता है, जो उनको यह देखने के लिए युक्तियुक्त रूप से दी जा सकती है कि देश में विधि और व्यवस्था भंग न हो अथवा भारत के किसी भाग में इतना कुशासन न होने पाये कि जिससे विधि और व्यवस्था का निर्वाह संकट में पड़ जाये। इससे आगे बढ़ना आवश्यक नहीं है। संविधान के निर्माता इतनी अधिक सावधानी बरतने के लिए इच्छुक प्रतीत होते हैं कि मेरी राय में वह इस संविधान की भावना से असंगत होगी ओर प्रांतीय निर्वाचकों में उत्तरदायित्व की भावना की उन्नति के लिए बहुत अहितकारी होगी।

समाप्त करने से पूर्व, श्रीमान् मैं सभा का ध्यान भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम के उस रूप की ओर आकर्षित करना चाहूंगा, जिसको भारत ने अस्थायी संविधानिक आदेश सन् 1947 के रूप में अनुकूलित किया है। 1947 के अनुकूलित अधिनियम में धारा 93 को, जो उस अधिनियम का महत्वपूर्ण भाग थी, नहीं रखा है और मैं समझता हूं कि उसको इसलिये छोड़ दिया गया कि नई व्यवस्था के लिए उसको असंगत समझा गया। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने कहा था कि सन् 1935 के भारतीय सरकार के अधिनियम में राज्यपाल, जिसे अपने स्वविवेकानुसार कार्यवाही करने दिया जाता था, वह किसी प्राधिकारी के प्रति

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

उत्तरदायी न होता था। मैं समझता हूं यह गलत है। मैं यह बता सकता हूं कि राज्यपाल अपनी उन समस्त शक्तियों के लिए, जिनका प्रयोग वह अपने स्वविवेकानुसार कर सकता था, मुख्य राज्यपाल (गवर्नर जनरल) के प्राधिकार के अधीन था और मुख्य राज्यपाल के द्वारा ब्रिटिश संसद् के भारत राज्यमंत्री के अधीन था। अब केवल यह अन्तर है कि हमारी कार्यपालिका 5000 मील की दूरी पर निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होने के स्थान में भारतीय निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होगी। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसे स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये, पर मैं नहीं समझता हूं कि भारतीय सरकार के सन् 1935 के अनुकूलित अधिनियम का दो वर्ष तक प्रवर्तन में रहना इन अनुच्छेदों की स्वीकृति को आवश्यक बनाता है जो हमारे सामने हैं। धारा 93 का आशय राजनैतिक था। उसका उद्देश्य यह था कि संविधान का इस प्रकार से प्रयोग न किया जाये कि ब्रिटिश सरकार जितनी शक्ति भारतीय जनता को देना चाहती थी, उससे अधिक शक्ति उसे देनी पड़े। भविष्य में भारत की जनता और सरकार में ऐसा कोई विरोध नहीं हो सकता है। जो कुछ मतभेद होगा वह प्रशासनीय अथवा वित्तीय अथवा आर्थिक प्रश्नों के संबंध मैं पैदा होगा। मान लीजिये, आर्थिक समस्याओं के प्रति कोई प्रांत जितना भारतीय सरकार अनुमोदन करे उससे कहीं अधिक उग्र प्रणाली ग्रहण करता है। मैं समझता हूं कि इसमें भारतीय सरकार के हस्तक्षेप करने की कोई बात नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल) : जब प्रान्तीय सरकार जान-बूझकर इस संविधान के उपबन्धों का पालन करने से मना कर दे और अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यवाही करने में रुकावट डाले, तो क्या होता है?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** कोई भी प्रान्त ऐसा नहीं कर सकता है। वह ऐसा इस कारण नहीं कर सकता कि वह कार्यवाही सर्वथा अवैध होगी। परन्तु यदि ऐसी स्थिति हो भी जाये, तो अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन केन्द्रीय सरकार को तुरन्त हस्तक्षेप करने की पर्याप्त शक्ति होगी। जैसी वह चाहे वैसी कार्यवाही करने की उसे यथेष्ट शक्ति होगी। वह अपने पदाधिकारियों से कुछ कार्यभार अपने ऊपर ले लेने के लिए कह सकती है और यदि इन पदाधिकारियों के कर्त्तव्यों के निर्वहन में कोई रुकावट डाली जाती है—अथवा यदि उनके विरुद्ध बल प्रयोग किया जाता है, इससे और अधिक तो कुछ हो भी नहीं सकता है—तो इस समय हमारे समक्ष जो ये अनुच्छेद हैं इनके अभाव में भी केन्द्रीय सरकार ऐसी चुनौती का सफलरूप से सामना कर सकेगा। मैं यह चाहूंगा कि सभा मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी द्वारा उठाये गये प्रश्न पर बड़ी सावधानी से विचार करे। मैंने कई बार इस परिस्थिति पर अपने मन में विचार किया है और प्रत्येक बार मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि इतनी बड़ी जिद का ऐसी विद्रोही प्रवृत्ति का, जिसका अनुमान श्री कृष्णमाचारी ने किया है, सफलतापूर्वक सामना भारतीय सरकार अनुच्छेद 275 और 276 द्वारा कर सकेगी। ऐसी गंभीर परिस्थिति में भारतीय सरकार को अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन सफल कार्यवाही करने की शक्ति होगी। तो फिर जो अनुच्छेद हमारे सामने रखे गये हैं, उनकी क्या आवश्यकता है?

श्रीमान्, एक वक्ता ने कहा था कि हमें विधि नहीं बघारनी चाहिये। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन पर किसी ने भी विधि सम्बन्धी

वाद-विवाद नहीं किया है। मैंने उस पर एक संकीर्ण विधि सम्बन्धी रूप में कदापि वाद-विवाद नहीं किया है। मैं एक व्यापक राजनैतिक दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार कर रहा हूं—देश के सर्वोत्तम हित के दृष्टिकोण से और प्रान्तीय निर्वाचक के इस महत्वपूर्ण तथ्य की अनुभूति पर कि अपने प्रान्त के शासन का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं पर है। उनको यह समझ लेना चाहिये कि यह विनिश्चय उनके ही द्वारा किया जायेगा कि शासन किस प्रकार चलाया जाये।

श्रीमान्, जो तर्क मैने प्रस्तुत किये है उनसे यदि संविधान के निर्माताओं का समाधान नहीं होता है और वे यह चाहते हैं कि अनुच्छेद 275 और 276 के अधीन दी हुई शक्ति से केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्ति मिले, तो मैं उनसे जरा ठहरने और इस बात पर विचार करने के लिए कहूंगा कि तत्समय इस प्रश्न को हल करने का क्या कोई दूसरा अच्छा तरीका नहीं है। इस सभा में तथा इससे बाहर जो कुछ चर्चा हुई है, उसको विचार में रखते हुये मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस संविधान को कठोर न बनाने के पक्ष में एक बड़ा भाग है, जो यह चाहता है कि कुछ समय तक संविधान में संशोधन उसी प्रकार से होने देना चाहिये, जिस प्रकार से साधारण विधियों में हुआ करता है। मैं समझता हूं कि कुछ महीने पहले प्रधान मंत्री ने जो भाषण दिया था, उसमें इसी विचार को प्रकट किया था। यदि सभा द्वारा यह विचार मान लिया जाता है—यदि मान लीजिये पांच वर्ष तक संविधान सामान्य विधि के अनुसार संशोधित किया जा सकता है, तो हमें यह देखने के लिए काफी समय मिल जायेगा कि प्रान्त किस प्रकार प्रगति करते हैं और उनका शासन किस प्रकार चलाया जाता है। यदि अनुभव द्वारा यह सिद्ध होता है कि स्थिति ऐसी बुरी है कि उसके लिए यह अपेक्षित है कि केन्द्रीय सरकार स्वयं अपने ऊपर केवल प्रत्येक प्रान्त की सुरक्षा का ही नहीं वरन सुशासन का भी उत्तरदायित्व ले तो आप न्यायपूर्वक संविधान का संशोधन करने के लिए आगे आ सकते हैं। पर मैं नहीं समझता हूं कि ऐसी कोई भी बात है कि जिसके कारण सभा आज डॉ. अम्बेडकर द्वारा हमारे समक्ष रखे गये अनुच्छेदों को स्वीकार करे।

श्रीमान्, मैं इन अनुच्छेदों का विरोध करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, सभा के समक्ष एक विचार रखने के लिए कर्तव्य ज्ञान ने मुझे प्रेरित किया है, अन्यथा मैं ध्वनि विस्तारक यंत्र के सन्मुख उपस्थित नहीं होता। मैं एक संक्षिप्त भाषण की आवश्यकता समझता हूं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये अनुच्छेदों का मैं संपूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं, परन्तु अनुच्छेद 188 के अपमार्जन करने की मसौदा समिति की बुद्धिमता पर मुझे कुछ भी विश्वास नहीं हुआ है। इसी विचार पर मैं जोर देना चाहता हूं।

श्रीमान्, उस अनुच्छेद के पीछे एक इतिहास है। पूरे दो दिन तक खूब वाद-विवाद हुआ था, जिसमें प्रमुख प्रधान मंत्रियों ने भाग लिया था। हमें यह समझ लेना चाहिये कि अनुच्छेद 188 किसलिये था। वह सामान्य परिस्थितियों के लिये नहीं था। गंभीर आपात होने पर ही इस अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल को कुछ शक्तियां दी गई थीं। मैं सभा को उस वाद-विवाद की याद दिलाऊंगा, जिसके अंत में श्री मुंशी का संशोधन अनुच्छेद 188 का एक अंग बनाया गया था। संशोधन पेश करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि राज्यपाल को संविधान का निलम्बन

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

करने देने से किसी उपयोगी प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी और यह भी कहा था कि राष्ट्रपति इससे पूर्व कार्यवाही करे। अनुच्छेद 188 ऐसी संभावना के लिए उपबन्ध करता है। उसमें केवल यह कहा गया है कि जब राज्यपाल का समाधान हो जाये कि शांति और प्रशान्ति के लिए ऐसा गंभीर संकट है, तो वह संविधान को निलम्बित कर दे। यह कल्पना सर्वथा गलत है कि उसे दो सप्ताह तक संविधान निलम्बित करने की शक्ति दी गई थी। खंड (3) उपबन्ध करता है कि अपनी उद्घोषणा को तुरन्त राष्ट्रपति के पास भेजना उसका कर्तव्य है और अनुच्छेद 188 के अधीन विषय से राष्ट्रपति परिचित हो जायेगा। यह एक महत्वपूर्ण विषय है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय पर गौर नहीं किया गया है। राज्यपाल को अपनी उद्घोषणा तुरन्त ही भेजनी पड़ेगी। यह अनुच्छेद इसलिये आवश्यक समझा गया था कि कुछ प्रधान मंत्रियों ने विश्वासपूर्वक इसको प्रस्तुत किया था। ऐसा हो सकता है कि राष्ट्रपति से सम्पर्क में आना बिल्कुल संभव न हो। केन्द्रीय सरकार से सम्पर्क में न आ सकने की स्थिति की क्या आप संभावना नहीं करते हैं? इस विषय में समय बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जब तक आप सम्पर्क में आयें और अनुज्ञा प्राप्त करें, तब तक बहुत सी बातें हो जायेंगी और यह विलम्ब हमारे प्रयोजन को सिद्ध नहीं होने देगा। माननीय श्री खरे ने कहा था कि इस अनुच्छेद का रखना आवश्यक नहीं है, क्योंकि हमारे पास हर प्रकार के संचार साधन हैं। बम्बई में मैं ऐसे दृष्टान्तों से परिचित हूं, जिनमें हम राज्यपाल से चौबीस घंटों तक संपर्क में न आ सकें। अनुच्छेद 278 के अधीन क्या उपबन्ध है? मद्रास का राज्यपाल कहता है कि शांति और प्रशान्ति संकट में है। थोड़ी देर के लिए यह मानते हुए भी कि संचार-साधन ठीक हों, फिर भी राष्ट्रपति कार्यवाही न कर सके। उसे मंत्रिमंडल बुलाना पड़ेगा; मंत्रिमंडल के सदस्य तुरन्त न आ सकें और जब तक वह मंत्रिमंडल की बैठक करे और उनकी अनुमति प्राप्त करे, तब तक उस अनुच्छेद के प्रयोजन की पराजय हो जायेगी। अतः ऐसी आकस्मिकता पर, जबकि राज्यपाल को यह विदित हो जाये कि विलम्ब से मूल उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, ध्यान देने के विचार से अनुच्छेद 188 उपबंधित किया गया था। मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि मसौदा समिति ने क्योंकर ऐसी संभावना की कल्पना निराधार समझी। यह सत्य है कि यह अनुच्छेद दो वर्ष पूर्व बनाया गया था, पर इन दो वर्षों में ऐसी बहुत सी बातें हो गई हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि घटनास्थल पर उपस्थित व्यक्ति के लिए तुरन्त विनिश्चय करना और कार्यवाही करना बहुत ही आवश्यक है, जिससे कि दुर्घटना रोकी जा सके। आज सर्वत्र खुले रूप में प्राधिकारियों का विरोध किया जाता है और यह विरोध सुसंगठित है। कार्यवाही करने के पूर्व वे टेलीफोन के तारों को काट देते हैं, जैसेकि उन्होनें कलकता एक्सप्रेस की दुर्घटना में किया था। देश के कई भागों में यही हो रहा है। अतः जब क्रांति हो रही है तो यह संभव हो सकता है कि वे संचार-साधनों को काट दें और कठिनाई पैदा हो जाये। इस आकस्मिकता की व्यवस्था करने के लिए राज्यपाल को ये शक्तियां दी गई हैं। मैं नहीं समझता हूं कि ऐसा भी कोई मूर्ख राज्यपाल होगा जो समय मिलने पर भी राष्ट्रपति को सूचना न दे। मैं इस बात का स्पष्टीकरण चाहूंगा कि ऐसे सरल प्रबन्ध में क्यों परिवर्तन किया गया, जिसे एक मूर्ख भी समझ सकता है और हमें यह संदेह क्यों हुआ कि कोई राज्यपाल गलत रीति से कार्यवाही करेगा। उपबन्ध के अनुसार उसे तुरन्त ही राष्ट्रपति को

सूचना देनी होगी और राष्ट्रपति यह कह सकता है कि "मुझे विश्वास नहीं हुआ है; उद्घोषणा रद्द कर दो"। आपको यह विचार करना चाहिये कि बुद्धिमतापूर्ण कार्यवाही करने और प्रान्त को संकट से बचाने का उत्तरदायित्व राज्यपाल पर होगा। राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रूप से इस चित्र में अंकित हो जाता है, क्योंकि अनुच्छेद 188 के खंड (3) के अनुसार राज्यपाल को तुरन्त ही उस विषय की सूचना देनी होगी। जैसाकि श्री प्रकाशम् ने कहा था कि यह एक साधारण ज्ञान की बात है कि घटनास्थल पर उपस्थित व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की शक्ति दी जाये, जिससे कि वह परिस्थिति बिगड़े नहीं। जिस उपबन्ध को अब प्रस्थापित किया गया है, वह इतना सरल नहीं है जितना कि होना चाहिये।

इसके साथ-साथ मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहूंगा कि मसौदा-समिति उस उपबन्ध को अपमार्जन करने के अनियमित कार्य को क्यों कर बैठती है, जिस पर पहिले सभा विचार कर चुकी है और जिसे स्वीकार कर चुकी है। मेरे विचार से यह अनुचित है, क्योंकि सभा उसको निश्चय कर चुकी है। यदि हम मसौदा-समिति नियुक्त करते हैं, तो हम उसे यह निर्देश देते हैं कि जो कुछ हम विनिश्चय करते हैं उसके आधार पर मसौदा बनाये। क्या यही रीति है जिसके अनुसार वह मसौदा बनाती है? उसका काम यह है कि जो विनिश्चय किये जा चुके हैं, उनकी जांच करे और उसके बाद उनके आधार पर मसौदा बनाये। अत: मैं इस बात को स्पष्ट कराना चाहूंगा—और एक विश्वासप्रद स्पष्टीकरण चाहूंगा कि इन दो वर्षों में ऐसा क्या हो गया, जिसके कारण मसौदा-समिति के सदस्यों ने इस कल्याणकारी, अच्छे तथा उपयोगी उपबन्ध का अपमार्जन किया।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संविधान में आश्चर्यजनक तथा क्रांतिकारी परिवर्तन करते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि अपने ही विनिश्चयों से हम बहुत दूर हो गये हैं। संविधान के सिद्धान्तों पर हमने महत्वपूर्ण विनिश्चय किये थे और हमने कुछ निश्चित सिद्धान्त और संकल्प स्वीकार किए थे और उनके अनुसार संविधान का मसौदा बनाया गया था। अब हर एक बात को छोड़ना पड़ेगा। केवल संविधान के मसौदे का ही परित्याग नहीं किया गया है, वरन् उन सरकारी संशोधनों तक का भी परित्याग कर दिया गया है, जो विनिहित कालावधि के अंतर्गत सभा के सदस्यों द्वारा पेश किये गये थे और जो सरकारी नीली पुस्तक में छपे हुए हैं। पिछले अवकाश में उन संशोधनों पर कुछ और संशोधन छापे गये थे और उनको भी घुमाया गया था। उनका भी परित्याग कर दिया गया। मैं यह संकेत करना चाहता हूं कि समस्त संशोधन और संशोधनों पर संशोधन जो आज पेश किये गये हैं, वे आज पहली बार ही संशोधनों की सूची में देखे गये हैं, जो आज से एक या दो दिन के भीतर ही घुमाई गई है। ऐसे गंभीर और उग्र परिवर्तनों को इस अंतिम समय में पुर:स्थापित नहीं करना चाहिये, जबकि हमारे जैसे सुस्त मनुष्यों के पास इतना समय नहीं है कि वे ये देखें कि क्या हो रहा है और क्या ये परिवर्तन हमारे मूल विनिश्चयों के और संविधान के अन्य भागों के अनुरूप हैं या नहीं। मैं निवेदन करता हूं कि मसौदा-समिति हमारे मूल विनिश्चयों से संविधान के मसौदे से और हमारे मूल अनुच्छेदों से दूर होती चली जा रही है। मसौदा-समिति को 'डांवाडोल समिति' कहना कदाचित् अधिक उपयुक्त होगा। मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 188 का अपमार्जन करना उन सिद्धांतों की एक बड़े महत्वपूर्ण और गंभीर रूप

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

से विमुखता है, जिसको सभा गंभीरतापूर्वक पहले स्वीकार कर चुकी है। कुछ माननीय सदस्य जो सदैव इस सभा की कार्यवाही को गंभीर रूप में स्वीकार करते हैं, उन्होंने इस आधार पर इन परिवर्तनों के समर्थन करने का प्रयत्न किया है कि कुछ आपात शक्तियों की बहुत आवश्यकता है। मैं उनसे सहमत हूं कि आपात शक्तियों की बहुत आवश्यकता है और मैं यह भी मानता हूं कि देश में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाली बड़ी-बड़ी शक्तियां सुसंगठित रूप में कार्य कर रही हैं। और कठोर शक्तियां आवश्यक हैं। पर मैं राज्यपाल अथवा शासक की हस्तक्षेप करने और आपात आदेश पारित करने की समान्य शक्ति को छीनने के प्रयत्न को नहीं समझ पाता हूं। यह एक ऐसा परिवर्तन है जो बहुत ही गंभीर है। पहले राज्यपाल प्रान्त में वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित होने वाला था, पर अब हम उससे बहुत दूर हो गये हैं और अब राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल नियुक्त किया जायेगा। प्रान्तीय स्वायत्तता में यह पहला धक्का है। इसके बाद राज्यों के उत्तर सदनों को हमने वास्तविक शक्ति से वंचित कर दिया है; हमने प्रान्तों के उत्तर सदनों से समस्त प्रभावी शक्तियों को ही नहीं छीना है, वरन उनका समुचित तथा प्रभावी रूप में प्रकार्य करना असंभव कर दिया है। और अब हम राज्य के मंत्रियों के और विधान-मंडलों के सदस्यों के और विशेषकर जनता के स्वयं अपनी समस्याओं के हल करने के अधिकार को छीन रहे हैं। जैसे ही हम राज्यपाल अथवा शासक को गंभीर आपात में हस्तक्षेप करने के उसके अधिकार से वंचित करते हैं, वैसे ही तुरन्त हम निर्वाचित प्रतिनिधियों और मंत्रियों को इस विषय में कुछ कहने के अधिकार से वंचित कर देते हैं। जैसे ही आपात साधनों के उपक्रमण का अधिकार राष्ट्रपति को दिया जाता है, उसी समय से आप स्थानीय विधानमंडलों के मंत्रियों और सदस्यों को हर एक उत्तरदायित्व से पूर्णतया मुक्त कर देते हैं। इसका प्रभाव यह होगा कि उनकी नैतिक शक्ति और उनका नैतिक उत्तरदायित्व बहुत ही जर्जरित हो जायेगा। इस प्रश्न के इस रूप पर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय के इस रूप पर सभा में यथेष्ट अथवा पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया गया है। यदि किसी राज्य में गड़बड़ होती है तो उसको दबाने की आरम्भिक जिम्मेवारी मंत्रियों पर होनी चाहिये। यदि वे असफल हो जाते हैं, तो आपात साधनों के उपक्रमण का अधिकार सर्वप्रथम राज्यपाल अथवा शासक को होना चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं होने देते, तो परिणाम यह होगा कि स्थानीय विधानमंडलों तथा मंत्रियों पर बिना किसी शक्तियों के विधि और व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व होगा। इससे सरलता और अनिवार्य रूप से एक प्रकार का अनुत्तरदायित्व बढ़ेगा। एक अच्छे शासन का आश्वासन देते हुये भी किसी राज्य के अधिकारी में हस्तक्षेप करने से न केवल मंत्रियों और सदस्यों से असहानुभूति ही प्राप्त होगी, बल्कि राष्ट्रपति की कार्यवाही का उस राज्य की जनता, विधान-मंडल के सदस्य और स्वयं मंत्रियों द्वारा मजाक उड़ाया जायेगा, उसमें रुकावट डाली जायेगी ओर उसका बहिष्कार किया जायेगा।

कुछ काल पूर्व ठीक यही भारतवर्ष में हुआ था। सन् 1921 से 1930 तक दुराज काल में मंत्रियों पर बिना किसी शक्ति के उत्तरदायित्व लादे गये थे। शक्ति ब्रिटिश सरकार ने रखी और स्थानान्तरित विषयों का उत्तरदायित्व जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रियों को दिया गया था। फल यह हुआ कि वे अनुत्तरदायी हो गये। यह योग्य ब्रिटिश विचारकों का कथन है। कलकत्ते की घटनाओं को केन्द्र के हाथ मजबूत करने के लिए तर्क के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मैं समझता हूं कि कलकत्ता के बारे में किसी बाहर के आदमी से कुछ अधिक जानने का मैं दावा कर सकता हूं। कलकत्ते में परिस्थिति ठीक वैसी ही नहीं है, जैसी कि समझी जाती है। अधिकतर नागरिकों की यह इच्छा नहीं है कि एक सुसंगठित रूप में अवैध कार्यवाहियों अथवा विधि के भंग करने का समर्थन किया जाये। स्पष्ट बात तो यह है कि कांग्रेस के अभ्यर्थी का दोष सरकार की लोक अप्रियता के कारण था। इसके साथ-साथ अन्य अनेकों क्षुद्र कारणों और परिस्थितियों के संयोग का वह परिणाम था। जिसका जिक्र करना मेरे लिये यहां आवश्यक नहीं है। पश्चिमी बंगाल के अधिकांश व्यक्ति यह चाहते हैं कि सरकार दृढ़ तथा कुशल हो। मैं देखता हूं कि नये निर्वाचन करने का कांग्रेस हाई कमांड का विनिश्चय यहां बहुत ही लोकप्रिय हुआ है और यही विनिश्चय बुद्धिमतापूर्ण है जो कि हो सकता है। इस विनिश्चय ने प्रान्त में विधि और व्यवस्था बनाये रखने को सुनिश्चित करने की परिस्थितियां पैदा करने का पूर्ण उत्तरदायित्व तुरन्त ही निर्वाचकों के कंधे पर डाल दिया है। यदि मंत्री गलती करते हैं तो लोगों को उस विषय पर प्रभावपूर्ण रूप में कहने का अवसर मिलेगा। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि यदि कांग्रेस सक्षम अभ्यर्थी भेजे तो उसकी सफलता सुनिश्चित है। वास्तव में कांग्रेस सरकार के विरुद्ध कोई बात नहीं है पर लोग योग्य और अनुभवी व्यक्ति चाहते है, जो ऐसे हों कि प्राधिकार का प्रयोग कर सकें। अतः कलकत्ता अथवा पूर्वी पंजाब अथवा दक्षिणी भारत की घटनाओं को इस सामान्य तथा कल्याणकारी सिद्धान्त से विलग होने के लिए, कि सर्वप्रथम विधि और व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रान्तीय अथवा राज्य के मंत्रियों पर होना चाहिये और प्रभावी रूप से प्रकार्य करने के लिए मंत्रिमंडल के हाथ में यथेष्ट शक्ति और उत्तरदायित्व होने चाहिये, न्याययुक्त नहीं मानना चाहिये। राज्यों को पूर्ण शक्तियां दिये बिना विधि और व्यवस्था का पूर्ण उत्तरदायित्व देने से गड़बड़ी हो जायेगी और राज्यों में बहुत असंतोष हो जायेगा और मैं यह कहे देता हूं कि यदि साम्यवादी और अन्य विधि भंग करने वाले इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो यह सभा उनके हाथ का खिलौना हो जायेगी। मैं यह नहीं कहता कि राष्ट्रपति को अधिकार छीनने की शक्ति न हो, पर उसे इस बात की अन्य शक्ति नहीं होनी चाहिये कि वह उपक्रमण करे और अनावश्यक लोक अप्रियता प्राप्त करे और इस रीति में दोष निकाले। यद्यपि आपातकाल में हस्तक्षेप करने की शक्ति केन्द्र को अवश्य होनी चाहिये, पर उसे इस विषय का सूत्रपात नहीं करना चाहिये। घोषणा करने के लिए मंत्रियों से परामर्श कर राज्यपाल अधिक उपयुक्त व्यक्ति होगा। इस घोषणा का जिस रूप में राष्ट्रपति ठीक समझता है, उस रूप में अनुसमर्थन अथवा परिवर्तन हो सकता है। इससे राष्ट्रपति की अधिकार छीनने की शक्ति का ह्रास नहीं होता है। एक और बात यह है कि स्थानीय प्रशासन पर उतरदायित्व रखने से इस विषय को मुखिया के समक्ष प्रस्तुत करना होगा।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

रोग स्वयं अपनी दबा बता देगा। यदि वे अपने प्रकार्यों का निर्वहन ठीक रूप से नहीं कर सकेंगे, तो सभा के विघटन करने और नये निर्वाचनों का आदेश देने के लिए वह एक अच्छा कारण हो जायेगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैं समझता हूं कि साधारणतया संविधानिक तंत्र तब तक विफल नहीं समझा जा सकता, जब तक धारा 153 के अधीन राज्यपाल द्वारा विघटन शक्तियों का प्रयोग न हो।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं अपने माननीय मित्र की आशंका को भली प्रकार समझ सकता हूं मैं मसौदे से खुश नहीं हूं। दो या तीन दिन में इन दोषों को देखना असंभव है। मैं इस बात से संतुष्ट नहीं हूं कि राज्यपाल की आपात उद्घोषणा के आधार पर ही राष्ट्रपति कार्यवाही आरम्भ कर दे। यह शीघ्रता में बनाये दोषपूर्ण मसौदे के कारण है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 188 का पूर्ण रूपेण अपमार्जन न किया जाये। किसी आपात साधन का उपक्रमण करने की राज्यपाल की शक्ति रहनी चाहिये, इससे मंत्री और विधान-मंडल अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे और साथ-साथ ही उत्तरदायित्व के होने से अपने आप उपचार हो जायेगा। यदि आपात में कार्यवाही करने के राज्य के मुख्य अधिकार में हम हस्तक्षेप करेंगे, तो इससे प्रान्तीय स्वायत्तता एक तमाशा बन जायेगी। मैं समझता हूं कि प्रान्तीय अधिकारों को काफी हड़प लिया गया है। प्रान्तीय सूचियों में बहुत से अधिकार हड़प लिये गये हैं। मैं समझता हूं कि शायद हम अनजाने में तानाशाही की ओर प्रवाहित हो रहे हैं। लोकतंत्र केवल एक लोकतंत्रात्मक वातावरण में तथा लोकतंत्रात्मक परिस्थितियों के अधीन ही समुन्नत होगा। लोगों को त्रुटियां करने दो और अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने दो। अनुभव एक महान् शिक्षक है। इसके विपरीत जो तर्क हमने आज सुने हैं, वे ब्रिटिश नौकरशाही के पुराने रद्दी तर्क हैं। अंग्रेज कहते थे कि उनको अधिकार छीनने की शक्ति होनी चाहिये, हम अपने विषयों का प्रबन्ध नहीं कर सकते और हमारे विषयों का प्रबन्ध करना केवल वे ही जानते थे। वे यह भी कहते थे कि यदि हमने कुछ गड़बड़ी की तो वे संविधान को रद्द कर देंगे और जो कुछ उचित समझेंगे, करेंगे। इस पर हमारा क्या उत्तर होता था? वह उत्तर यह था "यदि आप हमें अपनी कार्यवाहियों के प्रति उत्तरदायी नहीं बनायेंगे, तो हम शासन-कार्य को नहीं सीख सकंगे। यदि हम इस महान् संविधानिक तंत्र का कुसंचालन करते हैं तो अपने कार्य के लिये हम जिम्मेवार होने चाहियें। त्रुटियों को दूर करने को हमें अवसर मिलना चाहिये"। हमारा यह तर्क भुला दिया गया है। अंग्रेजों का पुराना तर्क कि छोटे-छोटे प्रान्तीय विषयों में हस्तक्षेप करना चाहिये, फिर से प्रस्तुत किया जा रहा है और जो लोग इस तर्क के विरोधी थे वे ही उसे अब स्वीकार कर रहे हैं। इस सदन के बड़े आदरणीय सदस्य अनजान में ब्रिटिश सरकार के पुराने तर्कों को स्वीकार कर रहे हैं। मैं निवेदन करता हूं कि जिन अंग्रेजों से हम घृणा करते थे वे भी वहां तक नहीं पहुंचे थे जहां हम पहुंच रहे हैं। मैं निवेदन करता हूं कि इसका उत्तर वहीं होगा, जो हमारे आदरणीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार को दिया था। अत: मैं निवेदन करता हूं कि केन्द्र द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप से राज्यों में बुरी प्रतिक्रिया होगी। यदि आप प्रान्तीय स्वयत्तता को पूर्णतया

मिटा देते हैं, तब तो वह न्यायसंगत होगा। पर उनको शक्तिहीन बनाते हुये उन पर उत्तरदायित्व रखना ठीक कार्य नहीं होगा।

श्रीमान्, माननीय डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 277-क की एक ऐसे रूप में व्याख्या की है कि उसमें पवित्र इच्छा नहीं है। मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर उस सुझाव का निराकरण कर रहे थे, जो स्वत: ही उनके मन में उत्पन्न हो गया था। मैं विश्वास करता हूं कि अनुच्छेद 277-क पवित्र इच्छाओं का अभिलेख है। उसमें स्पष्टता का अभाव है। उसमें कुछ भी नहीं कहा गया है और उसमें सब कुछ कहा गया है। जरा से बहाने पर वह केन्द्र को हस्तक्षेप करने का हक देता है और वह गंभीर से गंभीर परिस्थिति में हस्तक्षेप करने से मना करने का हक भी केन्द्र को दे सकता है। उसमें अस्पष्टता इतनी सावधानी से सुरक्षित है, उसका मसौदा इतने धोखे से परिपूर्ण है कि इस अनुच्छेद की अस्पष्टता और टालमटोल के लिये मसौदा-समिति की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते हैं। अनुच्छेद में यह कहा गया है:

"बाह्य आक्रमण से प्रत्येक राज्य का संरक्षण करना संघ का कर्तव्य होगा।"

वास्तव में ऐसा ही है। पर वह एक पवित्र रूप में अभिव्यक्त किया गया है। उसमें कहा गया है: "बाह्य आक्रमण से.....।" इसके स्थान में हम किसी तंत्र की व्यवस्था की तथा उन अवसरों की स्पष्ट अभिव्यक्ति की, जिनमें उस तंत्र का प्रवर्तन किया जा सकता था, आशा करते थे। इसके बाद उन्होंने इस अनुच्छेद में कहा है "तथा यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाये"। यह भी उतना ही अस्पष्ट है। मैं समझता हूं कि यदि इस उद्देश्य का कोई अनुच्छेद "कि यह देखने के लिए कि प्रान्तों में शासन ठीक चल रहा है संघ सरकार को उनके दिन7प्रति-दिन के प्रशासन में हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी" प्रविष्ट कर दिया जाता तो और अधिक अच्छा होता। मैं समझता हूं कि यदि कोई इस उद्देश्य का अनुच्छेद अधिनियमित किया जाता कि यह देखने को शक्ति कि प्रत्येक परिवार की निजी आर्थिक व्यवस्था कुछ सिद्धान्तों के अनुसार चलाई जाती है संघ सरकार को होनी चाहिये, तो वह भी उतना ही अच्छा होता। यह अनुच्छेद 277-क बहुत ही अस्पष्ट है और मैं निवेदन करता हूं कि इसमें स्पष्टता का अभाव है अथवा कदाचित प्रान्त और राज्यों के विषयों में हस्तक्षेप करने का बहाना ढूंढने के लिये स्पष्टता को जान बूझकर दूर रखा गया है। इससे भी विरोध और असंतोष होगा और एक दीर्घकालीन त्याग और बलिदान से संघ-सरकार की जो लोकप्रियता स्थापित की गई है, उसमें बहुत कुछ हानि होगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि प्रान्तों के निजी प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने के लिए भाषा की अस्पष्टता के द्वारा बहानों का उपबन्ध जानबूझकर नहीं होना चाहिये। यदि किसी आधार पर हस्तक्षेप करने की इच्छा है, तो उन आधारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देना चाहिये और उन शक्तियों के प्रयोग करने के अवसरों की स्पष्ट व्याख्या कर देनी चाहिये और उनको स्पष्ट रूप में निर्धारित कर देना चाहिये न कि उन्हें अस्पष्ट छोड़ दिया जाये। जैसा मैंने इस अनुच्छेद को समझा है, उसके अनुसार उसका प्रयोग केन्द्रीय सरकार के बैरियों द्वारा केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए किया जायेगा। केन्द्रीय सरकार के अहित के लिए केन्द्रीय सरकार के बैरियों अर्थात साम्यवादियों के कहने पर इस अनुच्छेद का पुर:स्थापन किया जाना चाहिये था। यह अधिक अच्छा होता। केन्द्रीय सरकार के लिए भाषा की अस्पष्टता की शरण लेना, जबकि स्पष्टता सम्भाव्य है, बहुत

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

ही संकटजनक है। इसके बाद में अनुच्छेद 178 पर आता हूं। इस अनुच्छेद में 'अन्यथा' शब्द पर आपत्ति की गई है। मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने अनुच्छेद 278(1) के जैसे किसी उपबन्ध के अनुसार कार्यवाही करने की सही कठिनाई बताई है, जिसमें यह कहा गया है कि राष्ट्रपति प्रतिवेदन मिलने पर अथवा अन्यथा कार्यवाही कर सकता है। मैं निवेदन करता हूं कि यह समूची बात गलत है। उसे केवल सूचना मिलने पर ही नहीं वरन आपात की उद्घोषणा होने पर भी कार्यवाही करनी चाहिये। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद की शब्दावली से किसी वक्ता को, जो उस पर आपत्ति करता है, जिच करने का लाभ नहीं उठाना चाहिये। मैं इस अनुच्छेद की शब्दावली और विचारधारा का विरोध करता हूं। मैं कहता हूं कि प्रसंग में 'अन्यथा' शब्द इस अनुच्छेद को बहुत ही अस्पष्ट बना देगा। संघ सरकार के अधिनियम को लोक अप्रिय बनाने के लिए छोटे से छोटे बहाने का उपयोग किया जायेगा। यदि यही उद्देश्य है तब तो ठीक है। पर इस पदावली के कारण, जिसमें इस विचार को बांधा गया है, इस अनुच्छेद पर आपत्ति की जायेगी।

इसके बाद मैं अनुच्छेद 278 के खंड (1) के परन्तुक पर आता हूं। उच्च न्यायालयों के विशेष क्षेत्राधिकार के अंतर्गत विषयों पर विचार करने के अधिकारों की यह रक्षा करता है। आपात की उद्घोषणा उच्च न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार से वंचित नहीं करेगी। इस परन्तुक का यह प्रभाव है। पर उच्चतम न्यायालय की स्थिति को इस परन्तुक में बड़ी आसानी से भुला दिया गया है। यद्यपि इस अनुच्छेद में उद्घोषणा से उच्च न्यायालयों के अधिकारों की प्रत्याभूति करने की सावधानी तो की गई है, पर उच्चतम न्यायालय के अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं की गई है। मैं केवल यही आशा प्रकट करता हूं कि इस परन्तुक में उच्चतम न्यायालय के किसी उल्लेख का अभाव उस न्यायालय की शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह आवश्यक नहीं है, क्योंकि केन्द्रीय सरकार सब अवस्थाओं में उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जैसा कि माननीय सदस्य ने स्वयं पहिले किसी अवसर पर कहा था, यह संविधान अधिवक्ताओं के लिए स्वर्ग तुल्य होगा। मैं अपने अनुभव द्वारा यह समझता हूं कि इस परन्तुक से बड़ी मुकदमेबाजी होगी और केवल अधिवक्ताओं को ही लाभ होगा। मैं चाहता हूं कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तुत किया गया निर्वचन ठीक हो, पर मुझे ऐसा दिखाई देता है। जब हम अनुच्छेद 278 के खंड (2) पर आते हैं, तो उसमें यह कहा गया है कि ऐसी किसी उद्घोषणा को किसी अनुवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृत अथवा परिवर्तित किया जा सकेगा।

***एक माननीय सदस्य:** एक बज चुका।

***अध्यक्ष:** आप अनुमानत: कितनी मिनट और लेंगे?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** लगभग दस मिनट और।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य अपना भाषण कल जारी कर सकेंगे। सभा कल प्रात:काल के नौ बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार ता. 4 अगस्त सन् 1949 के प्रात:काल के नौ बजे तक के लिए स्थगित हो गई।